

Business Studies

कक्षा-XII

| क्र.सं. | नाम | पद |
|---------|------------------|--|
| 1. | सविता दराल | प्रधानाचार्या सर्वोदय कन्या विद्यालय माता सुन्दरी रोड, नई दिल्ली-110002 |
| 2. | श्री ईश्वर सिंह | पी. जी. टी (कॉमर्स) आर. पी. वी. वी, नरेला, दिल्ली - 110040 |
| 3. | श्री विनोद कुमार | पी. जी. टी (कॉमर्स) रा. उ. मा. बाल विद्यालय माता सुन्दरी रोड, नई दिल्ली -2 |
| 5. | निखत इस्लाम | पी. जी. टी (कॉमर्स) सर्वोदय बाल विद्यालय राउज़ रवेन्यू दिल्ली 110002 |

SYLLABUS

One Paper

Max. Marks :100

Unitwise Weightage

| Units | Periods | Marks |
|--|----------------|--------------|
| Part A : Principles and Functions of Management | | |
| 1. Introduction to Management | 12 | 5 |
| 2. Principles of Management | 12 | 6 |
| 3. Business Environment | 10 | 5 |
| 4. Planning | 12 | 6 |
| 5. Organizing | 16 | 8 |
| 6. Staffing | 14 | 6 |
| 7. Directing | 16 | 8 |
| 8. Controlling | <u>14</u> | <u>6</u> |
| | 104 | 50 |
| Part B : Business Finance and Marketing | | |
| 9. Financial Management | 22 | 12 |
| 10. Financial Markets | 20 | 8 |
| 11. Marketing Management | 30 | 14 |
| 12. Consumer Protection | 16 | 6 |
| Part C : Project | <u>16</u> | <u>10</u> |
| | 104 | 50 |

Part A : Principles and Functions of Management

Unit I : Nature and significance of Management **(Periods 12)**

- * Management - concept, objective and importance
- * Management as Science, Art and Profession
- * Levels of Management
- * Management functions - planning, organising, staffing, directing and controlling.
- * Coordination - concept, characteristics and importance.

Unit 2 : Principles of Management **(Periods 12)**

- * Principles of Management - concept, nature and significance
- * Fayol's principles of Management

- * Taylor's Scientific Management - principles and techniques

Unit 3 : Management and Business Environment (Periods 10)

- * Business Environment - concept and importance
- * Dimensions of Business Environment - Economic, Social, Technological, Political and Legal
- * Impact of Government policy changes on business with special reference to liberalization, privatization and globalisation in India

Unit 4 : Planning (Periods 12)

- * Concept, importance and limitations
- * Planning process
- * Single use and Standing Plans - Objectives, Strategy, Policy, Procedure, Method, Rule, Budget and Programme.

Unit 5 : Organising (Periods 16)

- * Concept and importance
- * Organizing Process
- * Structure of organization - functional and divisional
- * Formal and informal organization
- * Delegation : concept, elements and importance.
- * Decentralization : concept and importance

Unit 6 : Staffing (Periods 14)

- * Concept and importance of staffing
- * Staffing as a part of Human Resource Management
- * Staffing Process :
 - Recruitment - sources
 - Selection - process
- * Training and Development - Concept and importance Methods of training on the job and off the job- Induction training, vestibule training, apprenticeship training and internship training.

Unit 7 : Directing (Periods 16)

- * Concept and importance
- * Elements of Directing
 - Supervision - concept, functions of a supervisor.
 - Motivation - concept, Maslow's hierarchy of needs; Financial and non-financial incentives
 - Leadership - concept, styles- authoritative, democratic and laissez

faire.

- Communication - concept, formal and informal communication; barriers to effective communication, how to overcome the barriers

Unit 8 : Controlling

(Periods 14)

- * Concept, nature and importance
- * Relationship between planning and controlling
- * Steps in the process of control

Part B : Business Finance and Marketing

Unit 9 : Financial Management

(Periods 22)

- * Concept and objectives of financial management.
- * Financial decisions : investment, financing and dividend and factors affecting
- * Financial planning : concept and importance
- * Capital Structure : concept and factors affecting.
- * Fixed and Working Capital - concept and factors affecting their requirements

Unit 10 : Financial Markets

(Periods 20)

- * Financial Markets : concept and types
- * Money market and its instruments
- * Capital market and its types (primary and secondary)
- * Stock Exchange - functions and trading procedure. Depository Services and D'mat Account.
- * Securities and Exchange Board of India (SEBI) - objectives and functions.

Unit 11 : Marketing Management

(Periods 30)

- * Marketing - concept and functions
- * Marketing management philosophies.
- * Marketing Mix - concept
 - Product-concept, branding, labeling and packaging
 - Price-factors determining price.
 - Physical distribution- concept, channels of distribution : types, choice of channels
 - Promotion - concept and elements; advertising - concept, role, objections against advertising, personal selling-concept and qualities of a good salesman, sales promotion-concept and techniques, public relations - concept and role.

Unit 12 : Consumer Protection

(Periods 16)

- * Concept and importance of consumer protection
- * Consumer Protection Act 1986
 - Meaning of consumer and consumer protection
 - Rights and responsibilities of consumers
 - Who can file a complaint and against whom?
 - Redressal machinery
 - Remedies available
- * Consumer awareness - Role of consumer organization and NGO's

Unit 13 : Project Work

(Periods 16)

अध्याय 1

प्रबन्ध की प्रकृति एवं महत्व

अन्य लोगों से कार्य कराने की कला को प्रबन्ध कहा जाता है। यह निर्धारित उद्देश्यों को प्रभावी ढंग से एवं दक्षतापूर्ण प्राप्त करने के लिए किये गए कार्यों की प्रक्रिया है।

अतः प्रबन्ध को प्रभावशीलता एवं कार्यक्षमता से लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु कार्य कराने की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इस का उद्देश्य सर्वमान्य लक्ष्यों/उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु किए जाने वाले प्रयासों के सम्बन्ध में मार्गदर्शन करना होता है।

प्रभावशीलता तथा कुशलता

प्रभावशीलता का अर्थ है दिए गए कार्य को सम्पन्न करना जबकि कुशलता का अर्थ है कार्य को सही ढंग से न्यूनतम लागत पर करना। यद्यपि प्रभावशीलता तथा कुशलता भिन्न हैं परन्तु ये एक दूसरे से संबंधित हैं। प्रबन्ध के लिए दोनों का होना महत्वपूर्ण है। उदाहरण :- एक फर्म द्वारा निर्धारित 1000 इकाइयों का लक्ष्य ऊँची लागत पर प्राप्त किया जाता है तो फर्म प्रभावी तो है परन्तु कुशलतापूर्वक नहीं है।

प्रबन्ध की विशेषताएँ/लक्षण

- (1) **उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया** :- प्रबन्ध लक्ष्य प्रधान प्रक्रिया है जो संगठनात्मक उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता करती है।
- (2) **सर्वव्यापी** :- प्रबन्ध सर्वव्यापक है जो सभी प्रकार के संगठनों जैसे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि के लिए आवश्यक होता है।
- (3) **बहुआयामी गतिविधि** :- प्रबन्ध बहुआयामी गतिविधि है जो कार्यों, व्यक्तियों तथा परिचालन के प्रबन्ध से सम्बन्धित होती है।
- (4) **निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया** :- प्रबन्ध एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जो तब तक चलती रहती है जब तक कि एक संगठन कुछ निर्धारित उद्देश्यों को पाने के लिए विद्यमान रहता है।
- (5) **सामूहिक क्रिया** :- प्रबन्ध एक सामूहिक गतिविधि है। एक संगठन में अनेक व्यक्ति संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कार्य करते हैं। कोई भी प्रबन्धकीय निर्णय अकेले में नहीं लिये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, विपणन प्रबन्धक, वित्तीय प्रबन्धक से परामर्श करके ही साख सुविधा को बढ़ा सकता है। माल की आपूर्ति देने से पहले उत्पादन प्रबन्धक से परामर्श करना पड़ता है।
- (6) **गत्यात्मक कार्य** :- प्रबन्ध एक गत्यात्मक कार्य है जिसे परिवर्तनशील वातावरण के अनुरूप कार्य करना पड़ता है।
- (7) **अदृश्य शक्ति** :- प्रबन्ध एक अदृश्य शक्ति है जिसे देखा नहीं जा सकता परन्तु इसके प्रभाव

को प्राप्त परिणामों से निर्धारित किया जा सकता है।

प्रबन्ध के उद्देश्य

(1) संगठनात्मक उद्देश्य :-

- (क) जीवित रहना जिसके लिए पर्याप्त आय अर्जित करना अनिवार्य है।
- (ख) लाभ अर्जित करना ताकि लागतों एवं जोखिमों को सहन किया जा सके।
- (ग) विकास करना ताकि भविष्य में संगठन और अच्छे प्रकार से कार्य कर सकें।

(2) सामाजिक उद्देश्य :- सामाजिक उद्देश्य संगठन के समाज के प्रति समर्पण से सम्बन्धित होते हैं। एक व्यावसायिक संगठन के सामाजिक उद्देश्य निम्नलिखित होते हैं :-

- (क) उचित कीमत पर गुणवत्तापूर्ण वस्तुओं की आपूर्ति करना।
- (ख) करों का ईमानदारी से भुगतान करना।
- (ग) उत्पादन की पर्यावरण मित्र विधियों को अपनाना।
- (घ) असामाजिक एवं अनुचित व्यापारिक व्यवहारों से बचना।
- (ङ) कर्मचारियों को उचित पारिश्रमिक एवं अच्छी कार्यदशाएं उपलब्ध कराना।

(3) वैयक्तिक उद्देश्य :- ये उद्देश्य संगठन के कर्मचारियों से सम्बन्धित होते हैं। प्रबन्ध को कर्मचारियों की भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं को पूर्ण करना पड़ता है जैसे उचित पारिश्रमिक, सामाजिक आवश्यकताएं, व्यक्तिगत वृद्धि एवं विकास सम्बन्धि आवश्यकताएं। प्रबन्ध को वैयक्तिक एवं संगठनात्मक उद्देश्यों में समन्वय रखना चाहिए।

प्रबन्ध का महत्व

- (1) सामूहिक लक्ष्यों की प्राप्ति :-** प्रबन्ध सामूहिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता करता है।
- (2) कार्यक्षमता में वृद्धि :-** प्रबन्ध कार्यक्षमता बढ़ाता है। इसके माध्यम से संसाधनों का उचित उपयोग सम्भव हो पाता है। जिससे लागतें कम होती हैं तथा उत्पादकता बढ़ती है।
- (3) गतिशील संगठन का निर्माण :-** प्रबन्ध गत्यात्मक संगठन का सृजन करता है। यह परिवर्तनशील पर्यावरण की चुनौतियों का सामना आसानी से कर सकता है।
- (4) व्यक्तिगत उद्देश्यों की प्राप्ति :-** प्रबन्ध वैयक्तिक उद्देश्यों को पाने में सहायता करता है। यह अभिप्रेरण एवं नेतृत्व के माध्यम से कर्मचारियों में समूह भावना का विकास करता है तथा व्यक्तिगत लक्ष्यों एवं संगठनात्मक लक्ष्यों में तालमेल बैठाता है।
- (5) समाज के विकास में सहायक :-** प्रबन्ध समाज के विकास में सहायता करता है यह गुणात्मक माल एवं सेवाओं को प्रदान करके, रोजगार के अवसर सृजित करके, उत्पादन की नई तकनीकें बनाकर समाज के विकास के लिए कार्य करता है।

प्रबन्ध की प्रकृति :- प्रबन्ध विज्ञान है या कला अथवा पेशा। कुछ विद्वान प्रबन्ध को कला बताते

है क्योंकि प्रबन्धक ज्ञान एवं कौशल के व्यावहारिक प्रयोग से सम्बन्ध रखता है जबकि कुछ विद्वान इसे विज्ञान मानते हैं क्योंकि यह उचित रूप से जाँचे गये सिद्धान्तों का प्रतिनिधित्व करता है। कुछ इसे पेशा भी मानते हैं।

1) **प्रबन्ध एक कला के रूप में :-** कला की कुछ विशेषताएं होती हैं जोकि निम्नलिखित हैं।

(क) **सैद्धान्तिक ज्ञान :-** जिस के लिए क्रमबद्ध एवं संगठित अध्ययन सामग्री उपलब्ध होनी आवश्यक है।

(ख) **वैयक्तिक प्रयोग :-** एक व्यक्ति दूसरों से भिन्न प्रकार से कार्य करता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की कार्य करने की शैली भिन्न होती है।

(ग) **अभ्यास एवं सृजनशीलता पर आधारित :-** कला में विद्यमान सैद्धान्तिक ज्ञान का सृजनशीलता अभ्यास समाहित होता है। एक कलाकार की क्षमता इस बात पर निर्भर करती है कि उसने कितना अभ्यास किया है तथा वह कितना सृजनशील है।

प्रबन्ध में कला की सभी विशेषताएं समाहित होती हैं अतः इसे कला कहा जा सकता है।

2) **प्रबन्ध एक विज्ञान के रूप में :-** विज्ञान किसी विषय का क्रमबद्ध ज्ञान होता है जो सही निष्कर्ष निकालने वाले निश्चित सिद्धान्तों पर आधारित होता है, जिनकी जाँच की जा सकती है। विज्ञान की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं।

(क) ज्ञान का क्रमबद्ध रूप जो सिद्धान्तों, अभ्यासों एवं प्रयोगों पर आधारित होता है।

(ख) प्रयोग एवं अवलोकन पर आधारित सिद्धान्त

(ग) सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत सिद्धान्त जिन्हें कभी भी तथा कभी भी सिद्ध किया जा सकता है।

(घ) कारण एवं प्रभाव सम्बन्ध। विज्ञान में सभी चरों का कारण एवं प्रभाव सम्बन्ध होता है।

प्रबन्ध में भी सिद्धान्तों एवं नियमों का क्रमबद्ध रूप विद्यमान होता है जो संगठनात्मक अभ्यासों को समझने में सहायक होते हैं। प्रबन्ध के अपने सिद्धान्त जो कारण एवं प्रभाव में सम्बन्ध स्थापित करते हैं परन्तु विज्ञान की तरह ये सिद्धान्त स्टीक नहीं होते इनमें परिस्थिति के अनुसार सुधार किया जा सकता है अतः प्रबन्ध विशुद्ध विज्ञान न हो कर सामाजिक विज्ञान है।

3. **पेशों के रूप में प्रबन्ध :-**

पेशा वह जीविका का साधन है जो विशिष्ट ज्ञान और प्रशिक्षण द्वारा संपोषित होता है, जिसमें प्रवेश प्रतिबन्धित होता है।

इसकी मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं :-

(1) **ज्ञान का सुपरिभाषित निकाय :-** सभी पेशे परिभाषित ज्ञान के समूह पर आधारित होते हैं जिसे शिक्षा से अर्जित किया जाता है।

(2) **प्रतिबन्धित प्रवेश :-** प्रत्येक पेशे में परीक्षा अथवा शैक्षणिक योग्यता के आधार पर प्रवेश होता है।

- (3) **सेवा उद्देश्य** :- प्रत्येक पेशे का मुख्य उद्देश्य अपने ग्राहकों की सेवा करना होता है।
- (4) **नैतिक आचार संहिता** :- सभी पेशे आचार संहिता से बंधे होते हैं जो उनके सदस्यों के व्यवहार को दिशा देते हैं।
- (5) **पेशागत परिषद्** :- सभी पेशे किसी न किसी पेशेवर संघ से जुड़े होते हैं जो इनमें प्रवेश का नियमन करते हैं।

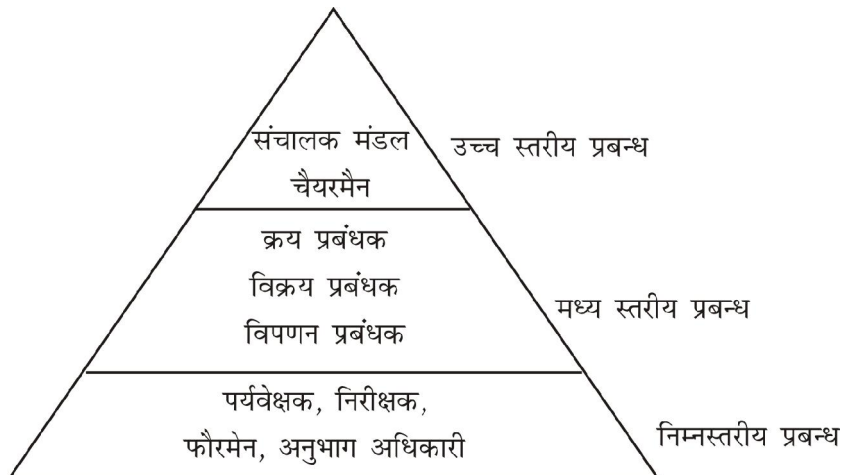
प्रबन्ध पेशे की सभी विशेषताओं को सन्तुष्ट नहीं करता अतः इसे एक पूर्ण पेशा नहीं कहा जा सकता।

प्रबन्ध के स्तर

उच्चस्तरीय प्रबन्ध के प्रमुख कार्य :- उद्देश्य निर्धारित करना, योजनाओं और नीतियों का ढांचा तैयार करना, एवं दूसरे लोगों के प्रयासों को निर्देशन और नेतृत्व प्रदान करना, वित्त एकत्रित करना आदि।

मध्य स्तरीय प्रबन्ध के प्रमुख कार्य :- उच्च स्तर द्वारा बनाई गई योजनाओं और नीतियों का निष्पादन करना। उच्च एवं निम्न स्तरीय प्रबन्ध के बीच कड़ी का कार्य करना। यह संसाधनों को एकत्रित एवं संगठित करते हैं। कर्मचारियों को प्रेरित करना, सम्बन्धित विभागों को विस्तृत निर्देशन देना।

निम्न स्तरीय प्रबन्ध के प्रमुख कार्य :- इस समूह के प्रबंधक वास्तव में उच्च और मध्य स्तरीय प्रबन्ध की योजनाओं के अनुसार क्रियाओं का निष्पादन करते हैं। ये उपकरणों की व्यवस्था, श्रमिकों का चयन, प्रशिक्षण श्रमिकों के बीच अनुशासन बनाना, उन का मनोबल बढ़ाने तथा उन्हें उचित कार्यदशाएं उपलब्ध करने का कार्य करते हैं।



प्रबन्ध के कार्य :-

- (1) **नियोजन** :- “क्या करना है, कैसे करना है, कब करना है और किसके द्वारा किया जाएगा। इसके बारे में पहले से निर्णय करना।
- (2) **संगठन** :- क्रियाओं को संगठित करना और योजनाओं के निष्पादन के लिए संगठन के ढाँचे

को स्थापित करना।

(3) **नियुक्तिकरण** :- इसका अभिप्राय भर्ती करने, प्रवर्तन, वृद्धि इत्यादि का निर्णय करने, कार्य का निष्पादन, मूल्यांकन एवं कर्मचारियों का व्यक्तिगत रिकार्ड बनाए रखने से है।

(4) **निर्देशन** :- नियुक्ति के पश्चात कर्मचारियों को सूचना, मार्गदर्शन देना, प्रेरित करना, पर्यवेक्षण करना तथा उनके साथ सम्प्रेषण करना।

(5) **नियन्त्रण** :- वास्तविक कार्य निष्पादन को नियोजित कार्य निष्पादन के साथ मेल करना तथा अन्तर (यदि है तो) के कारणों का पता लगाकर शोधक मापों का सुझाव देना।

समन्वय :- वह शक्ति जो प्रबन्ध के सभी कार्यों को सुचारू रूप से चलाती एवं एक धागे में बांध कर रखती है। उसे समन्वय कहते हैं।

समन्वय की प्रकृति एवं विशेषताएं :-

(1) **समन्वय सामूहिक प्रयासों को एकत्रित रखता है**:- समन्वय विभिन्न व्यावसायिक गतिविधियों में एकता लाकर उन्हें उद्देश्यपूर्ण गतिविधि के रूप में सामान्य लक्ष्य की ओर अग्रसर करता है।

(2) **प्रयासों की एकात्मकता को सुनिश्चित करता है**:- समन्वय व्यक्तियों के प्रयासों में एकता लाता है तथा विभिन्न विभागों को जोड़ने की शक्ति का कार्य करता है।

(3) **सतत् प्रक्रिया है** :- समन्वय एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया।

(4) **सभी प्रबन्ध का उत्तरदायित्व है**:- समन्वय प्रत्येक प्रबंधक का कार्य है। सभी स्तर के प्रबंधकों को समन्वय कार्य करना पड़ता है।

(5) **एक व्यापक कार्य है** :- विभिन्न विभागों की क्रियाएं प्रकृति से एक दूसरे पर निर्भर करती हैं इसीलिए समन्वय की आवश्यकता प्रबंध के सभी स्तरों पर होती है।

(6) **एक ऐच्छिक कार्य है** :- एक संगठन में सदस्य स्वेच्छा से एक दूसरे से सहयोग करते हैं अतः यह सोचा समझा कार्य है।

1 अंक वाले प्रश्न

1. प्रबन्ध अदृश्य है। टिप्पणी कीजिए।
2. कुशलता से आप क्या समझते हैं?
3. प्रबन्ध के कोई दो महत्वपूर्ण पहलू लिखिए?
4. सफल होने के लिए एक संगठन को वातावरण की आवश्यकताओं के अनुसार अपने लक्ष्यों में परिवर्तन करना चाहिए। यह कथन प्रबन्ध की किन विशेषताओं को प्रदर्शित करता है?
5. प्रभावकारिता से आपका क्या तात्पर्य है?

3/4 अंक वाले प्रश्न

6. निम्न में संलग्न प्रबन्ध के स्तरों का नाम लिखिए।

- (1) श्रमिकों की क्रियाओं का निरीक्षण करना
- (2) मुख्य निर्णय लेना
- (3) बाह्य संसार के साथ ताल मेल

(4) कर्मचारियों का चुनाव

7. कला के रूप में प्रबन्ध की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

8. प्रबन्ध को एक बहुमुखी कार्य क्यों माना जाता है?

5/6 अंक वाले प्रश्न

9. “प्रबन्ध विज्ञान और कला दोनों हैं।” इस कथन के सन्दर्भ में प्रबन्ध की प्रकृति की व्याख्या कीजिए?

10. “उचित प्रबन्ध के आभाव का परिणाम समय, धन और प्रयास की क्षति होता है। इस कथन के सन्दर्भ में प्रबन्ध की व्याख्या कीजिए?

अध्याय 2

प्रबन्ध के सिद्धान्त

प्रबन्ध के सिद्धान्त आधारभूत सत्य का कथन होते हैं जो प्रबन्धकीय निर्णय एवं कार्यों हेतु मार्गदर्शन करते हैं। ये उन घटनाओं के अवलोकन एवं विश्लेषण के आधार पर बनाये जाते हैं जिनका प्रबन्धकों द्वारा वास्तविक कार्य व्यवहार में सामना किया जाता है। ये मानवीय व्यवहारों से सम्बन्धित होते हैं अतः ये विज्ञान के सिद्धान्तों से भिन्न होते हैं। ये प्रबन्ध की तकनीकों से भी भिन्न होते हैं। जहाँ तकनीकों कार्य करने के तरीकों से सम्बन्धित होती है वही सिद्धान्त कार्यों हेतु मार्गदर्शन करते हैं तथा निर्णयों में सहायक होते हैं।

प्रबन्ध के सिद्धान्तों की प्रकृति :-

- 1) **सर्व प्रयुक्त** :- ये सार्वभौमिक होते हैं क्योंकि इन्हें सभी प्रकार के संगठनों में प्रयोग किया जाता है।
- 2) **सामान्य मार्गदर्शन** :- ये कार्य करने के लिए दिशा निर्देश होते हैं परन्तु ये पूर्वनिर्मित समाधान नहीं बताते क्योंकि वास्तविक व्यावसायिक स्थितियाँ जटिल एवं गत्यात्मक होती हैं।
- 3) **व्यवहार एवं शोध द्वारा निर्मित** :- ये सिद्धान्त अनुभवों एवं तथ्यों के अवलोकन के आधार पर विकसित किए जाते हैं।
- 4) **लोचशील** :- ये लोचशील होते हैं जिन्हें परिस्थितियों के अनुरूप संशोधित करके प्रयोग किया जा सकता है।
- 5) **मुख्यतः व्यावहारिक** :- इन की प्रकृति मुख्य रूप से व्यावहारिक होती है क्योंकि इनका उद्देश्य प्राणियों के व्यवहार को प्रभावित करना होता है।
- 6) **कारण एवं परिणाम का संबंध** :- इनके द्वारा कारण एवं प्रभाव में सम्बन्ध स्थापित किया जाता है तथा ये निर्णयों के परिणामों को बताते हैं।
- 7) **आकस्मिक** :- ये आकस्मिक होते हैं जिनका प्रयोग विद्यमान परिस्थिति के अनुसार किया जाता है।

प्रबन्ध के सिद्धान्तों का महत्व

- 1) ये प्रबन्धकों को उपयोगी **अन्तर्दृष्टि प्रदान** करते हैं जिससे वे विवेकपूर्ण तरीके से प्रबन्धकीय निर्णय ले सकते हैं।
- 2) इनकी सहायता से संगठन के मानवीय एवं भौतिक **संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग** सम्भव होता है।

- 3) ये प्रबन्धकों को व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक रूप से समस्या समाधान के उपाय करने में सक्षम बनाते हैं।
- 4) ये वातावरण की परिवर्तनीय आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायक होते हैं।
- 5) ये व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करने में सहायता करते हैं।
- 6) ये प्रबन्धकीय प्रशिक्षण, शिक्षा एवं शोध हेतु आधार उपलब्ध कराते हैं।

टेलर का वैज्ञानिक प्रबन्ध

एफ. डब्ल्यू. टेलर (1856-1915) एक अमेरिकी इंजीनियर थे जिन्होंने कार्य को करने के लिए वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित नियमों को अपनाने पर बल दिया। उन्होंने कार्य को सर्वोत्तम तरीके से करने की वैज्ञानिक विधि का अध्ययन किया जिससे कार्यक्षमता एवं उत्पादन बढ़े तथा लागत में कमी हो सके।

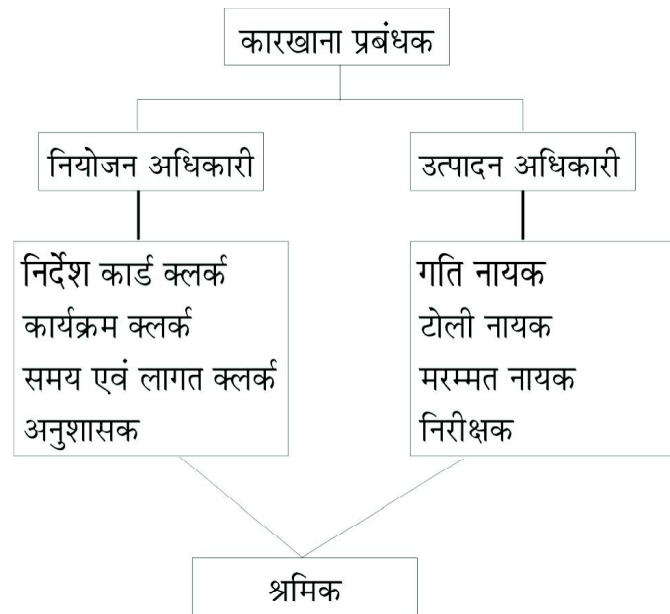
वैज्ञानिक प्रबन्ध ठीक से यह जानने की कला है कि आप अपने कर्मचारियों से क्या करवाना चाहते हैं तथा वे कैसे कार्य को सर्वोत्तम एवं न्यूनतम लागत पर करते हैं।

वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त :-

- 1) विज्ञान, न कि अंगूठा टेक शासन :- इस सिद्धान्त के अनुसार निर्णय तथ्यों पर आधारित होने चाहिए न कि अंगूठा टेक नियमों पर अर्थात् संगठन में किये जाने वाले प्रत्येक कार्य, वैज्ञानिक जाँच पर आधारित होना चाहिए न कि अन्तर्दृष्टि व निजी विचार पर।
- 2) मधुरता न कि विवाद :- इस सिद्धान्त के अनुसार प्रबन्ध एवं श्रमिकों में विश्वास एवं समझदारी होनी चाहिए। उन्हें एक-दूसरे के प्रति सकारात्मक सोच विकसित करनी चाहिए जिससे वे एक टीम के रूप में कार्य कर सकें।
- 3) सहयोग न कि व्यक्तिवाद :- यह सिद्धान्त मधुरता, न कि विवाद का संशोधित रूप है। इसके अनुसार संगठन में श्रमिकों एवं प्रबन्धकों के बीच सहयोग होना चाहिए जिससे कार्य को सरलता से किया जा सके।
- 4) अधिकतम कार्यक्षमता एवं श्रमिकों का विकास :- टेलर के अनुसार श्रमिकों का चयन कार्य की आवश्यकता के अनुसार, क्षमता एवं योग्यता को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए तथा उनकी कार्यक्षमता एवं कुशलता बढ़ाने हेतु उन्हें उचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

वैज्ञानिक प्रबन्ध की तकनीक :-

- (1) क्रियात्मक फौरमैनिशिप :- इस का उद्देश्य विशेषज्ञ फोरमैन नियुक्त करके श्रमिकों के पर्यवेक्षण की गुणवत्ता बढ़ाना है। उनके अनुसार नियोजन को निष्पादन से अलग रखना चाहिए तथा नियंत्रण हेतु आठ फोरमैन होने चाहिए जिनमें से चार नियोजन विभाग तथा चार उत्पादन विभाग के अधीन होने चाहिए। इन सभी के द्वारा प्रत्येक श्रमिक का पर्यवेक्षण करना चाहिए जिससे श्रमिकों के कार्य की गुणवत्ता बढ़ सके।



(2) **कार्य का मानकीकरण एवं सरलीकरण** :- कार्य के मानकीकरण का आशय मानक उपकरणों, विधियों, प्रक्रियाओं को अपनाने तथा आकार, प्रकार, गुण, वचन, मापों आदि को निर्धारित करने से है। इससे संसाधनों की बर्बादी कम होती है तथा कार्य की गुणवत्ता बढ़ती है। कार्य को उत्पाद की अनावश्यक विविधताओं को समाप्त करके सरल बनाया जा सकता है।

(3) **विधि अध्ययन** :- यह एक कार्य को करने की विधियों से सम्बन्धित होता है। इसके अन्तर्गत उत्पादन की सम्पूर्ण प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है जिससे कार्य को करने की सर्वोत्तम विधि का पता लगाया जा सके।

4) **गति अध्ययन** :- इसके अन्तर्गत कार्य को करने में कर्मचारी की गतियों का अध्ययन किया जाता है ताकि उनकी अनावश्यक गतियों को रोका जा सके।

5) **समय अध्ययन** :- यह तकनीक कार्य को करने में लगने वाले मानक समय का निर्धारण करने में सहायता करती है।

6) **थकान अध्ययन** :- इससे यह तय किया जाता है कि मध्यान्तर कितनी बार एवं कितने समय के लिए हो ताकि कर्मचारी उचित प्रकार से कार्य कर सके।

7) **विभेदात्मक कार्य मजदूरी प्रणाली** :- यह मजदूरी भुगतान की ऐसी विधि है जिसमें श्रमिकों को उनकी कार्यक्षमता के अनुसार भुगतान किया जाता है। मानक स्तर तक या अधिक कार्य करने वाले श्रमिकों को अधिक तथा मानक स्तर से कम कार्य करने वाले श्रमिकों को कम पारिश्रमिक मिलता है।

8) मानसिक क्रांति :- इसके द्वारा श्रमिकों व प्रबन्धकों की एक-दूसरे के प्रति सोच को बदलने पर जोर दिया गया है। जिससे संगठन में परस्पर विश्वास की भावना उत्पन्न हो सके तथा उत्पादन को बढ़ाया जा सके।

फेयोल के प्रबन्ध सिद्धान्त :-

फेयोल को आधुनिक प्रबन्ध सिद्धान्त का जनक माना जाता है इनके द्वारा प्रबन्ध के 14 सिद्धान्त दिए गए हैं जिन्हें सभी प्रकार के प्रशासनिक कार्यों तथा आर्थिक, वैज्ञानिक या राजनीतिक मानवीय गतिविधियों में सामान्य रूप से लागू किया जा सकता है। फेयोल द्वारा दिए गए 14 सिद्धान्त निम्नलिखित हैं।

(1) कार्य का विभाजन :- कार्य को छोटे-छोट भागों में बाँट कर, व्यक्तियों को उनकी योग्यता, क्षमता एवं अनुभवों के आधार पर दिया जाता है। बार-बार एक ही कार्य को करने से कर्मचारी उसमें विशिष्टता प्राप्त कर लेता है परिणामस्वरूप उसकी कार्यक्षमता बढ़ती है।

(2) अधिकार एवं उत्तरदायित्व :- अधिकार एवं उत्तरदायित्व सह-सम्बन्धित हैं। अधिकार का आशय निर्णय लेने की शक्ति से है तथा उत्तरदायित्व का आशय कार्य के सम्बन्ध में दायित्व से है। उत्तरदायित्व , अधिकार का स्वाभाविक परिणाम है। पर्याप्त अधिकार देकर अधीनस्थों से कार्य को प्रभावी रूप से कराया जा सकता है।

(3) अनुशासन :- अनुशासन का आशय संगठन की व्यवस्थित कार्यप्रणाली को सुचारू रूप से चलाने के लिए संगठन के नियमों का पालन करने से है। एक संगठन को उचित प्रकार से चलाने के लिए अनुशासन अत्याधिक आवश्यक होता है। यह कार्यक्षमता बढ़ाने में भी सहयोग करता है।

(4) आदेश की एकता :- इस सिद्धान्त के अनुसार अधीनस्थ को केवल एक वरिष्ठ से आदेश प्राप्त होने चाहिए तथा उसी के प्रति उसे जवाब देय होना चाहिए। इससे उत्तरदायित्व निर्धारण में भी सहायता मिलती है।

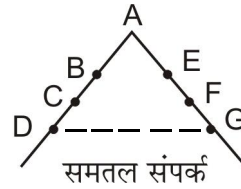
(5) निर्देश की एकता :- यह सिद्धान्त कार्य की एकता तथा समन्वय को सुनिश्चित करता है। इसके अनुसार समान गतिविधियों को एक ही समूह में रखना चाहिए तथा उनके कार्य की एक ही योजना होनी चाहिए।

(6) सामूहिक हित से व्यक्तिगत हित का कम महत्व होना :- व्यावसायिक उद्यम व्यक्तिगत कर्मचारियों से अधिक महत्वपूर्ण होता है इसलिए व्यावसायिक संगठन के हित को व्यक्तियों के निजी हितों से ऊपर माना जाना चाहिए।

(7) कर्मचारियों का पारिश्रमिक :- इस सिद्धान्त के अनुसार कर्मचारियों को उचित वेतन दिया जाना चाहिए जिससे वे सन्तुष्ट हो सकें तथा अधिकतम कार्य कर सकें।

(8) केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीकरण :- केन्द्रीयकरण के अन्तर्गत महत्वपूर्ण निर्णय उच्च प्रबन्धकों द्वारा किए जाते हैं जबकि विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत निर्णय लेने का अधिकार निम्नस्तर तक फैला होता है। इनके बीच उचित संतुलन होना चाहिए।

(9) **सोपान श्रृंखला** :- यह प्राधिकार की रेखा है जो आदेश की श्रृंखला तथा संदेशवाहन की श्रृंखला के रूप में कार्य करती है। उच्च स्तर से दिये गये निर्देश तथा आदेश मध्य स्तर के माध्यम से निम्न स्तर पर पहुँचते हैं। इस श्रृंखला का उपयोग करने से संगठन में आदेश की एकता आती है तथा दोहरे आदेशों के भ्रम से छुटकारा मिलता है। इस श्रृंखला का उल्लंघन नहीं करना चाहिए परन्तु आवश्यकता पड़ने पर एक स्तर पर कार्यरत कर्मचारी समतल संपर्क के द्वारा संपर्क कर सकते हैं।



(10) **उचित व्यवस्था** :- इस सिद्धान्त के अनुसार सही कार्य पर सही व्यक्ति को होना चाहिए इससे कार्यक्षमता तथा संसाधनों का प्रभावी उपयोग होता है।

(11) **समता** :- कर्मचारियों के साथ न्याय, उदारता, मैत्रीपूर्ण एवं समानता का व्यवहार करना चाहिए जिससे इन का अधिकतम योगदान प्राप्त हो सके।

(12) **कर्मचारियों के कार्यकाल में स्थायित्व** :- इस सिद्धान्त के अनुसार कर्मचारियों के कार्यकाल में स्थायित्व होना चाहिए। उन्हें बार-2 पद से नहीं हटाया जाना चाहिए तथा उन्हें कार्य की सुरक्षा का विश्वास दिलाया जाना चाहिए ताकि उनका अधिकतम योगदान मिल सके।

(13) **पहल** :- पहल का आशय कोई कार्य किये जाने की आज्ञा लेने से पूर्व कुछ करने से लगाया जाता है। कर्मचारियों को सभी स्तरों पर सम्बन्धित कार्य के बारे में पहल करने की अनुमति होनी चाहिए। इससे वे प्रेरित एवं सन्तुष्ट होते हैं।

(14) **सहयोग की भावना** :- इसका आशय सामूहिक प्रयासों में तालमेल तथा परस्पर समझदारी से है। इससे कर्मचारियों में सुदृढ़ता आती है। इसे उचित संदेशवाहन एवं समन्वय से प्राप्त किया जा सकता है।

आदेश की एकता तथा निर्देश की एकता में अंतर

| आधार | आदेश की एकता | निर्देश की एकता |
|---------|--|--|
| 1. अर्थ | किसी भी अधीनस्थ को एक ही अधिकारी से आदेश प्राप्त करने चाहिए तथा उसी के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। | समान उद्देश्यों वाली क्रियाओं के लिए एक अध्यक्ष एवं एक योजना अधिकारी होना चाहिए। |

| | | |
|-----------|--|--|
| 2. लक्ष्य | दोहरी अधीन स्थिति को रोकना | क्रियाओं के एक-दूसरे पर आच्छादन को रोकना |
| 3. प्रभाव | कर्मचारी को व्यक्तिगत रूप से प्रभावित करता है। | पूरे संगठन को प्रभावित करता है। |

टेलर तथा फेयोल के सिद्धान्तों में अन्तर

- (1) टेलर ने मुख्य रूप से कार्य, श्रमिकों एवं पर्यवेक्षकों के सम्बन्ध में सुझाव दिये हैं जबकि फेयोल ने प्रशासन या प्रबन्धकों की कार्यक्षमता के बारे में सुझाव दिये हैं।
- (2) टेलर ने कार्य एवं उपकरणों के मानकीकरण पर अधिक बल दिया है जबकि फेयोल ने सामान्य प्रबन्ध के सिद्धान्तों तथा प्रबन्धकों के कार्यों पर अधिक बल दिया है।
- (3) टेलर ने “वैज्ञानिक प्रबन्ध” पदों की अभिव्यक्ति की है जबकि फेयोल ने “प्रशासन के सामान्य सिद्धान्तों” की अभिव्यक्ति की है।

एक अंक वाले प्रश्न

- (1) “प्रबन्ध के सिद्धान्त विशुद्ध विज्ञान के सिद्धान्तों से भिन्न हैं” कोई एक भिन्नता लिखिए।
- (2) यह क्यों कहा जाता है कि प्रबन्ध के सिद्धान्त सार्वभौमिक हैं?
- (3) थकान अध्ययन का क्या उद्देश्य है?
- (4) वैज्ञानिक प्रबन्ध के दो सिद्धान्त बताइए?
- (5) प्रबन्ध के सिद्धान्त से क्या अभिप्राय है?

3/4 अंक वाले प्रश्न

- (1) प्रबन्ध के निम्न सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए?
 - (क) समता (ख) कर्मचारियों का पारिश्रमिक
- (2) आप के विद्यालय में किताबों को ऑफिस, चॉक को लाईब्रेरी तथा ऑफिस दस्तावेजों को स्टाफरूम में रखा जाता है। ये किस प्रकार विद्यालय के उद्देश्यों को प्राप्त करने को प्रभावित करेगा। यहाँ प्रबन्ध की कौन सी पद्धति का अनादर हो रहा है? आप उसे किस प्रकार ठीक करेगे।

5/6 अंक वाले प्रश्न

- (1) टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध की दो तकनीकों का वर्णन करो।
- (2) फेयोल के निम्न सिद्धान्तों का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।
 - (क) उचित व्यवस्था (ख) सोपान श्रृंखला
 - (ग) पहल (घ) समूह भावना

अध्याय 3

व्यवसायिक वातावरण

व्यवसायिक वातावरण से अभिप्राय उन व्यक्तियों, संस्थानों तथा शक्तियों से होता है जो व्यवसायिक उद्यम के परिचालन को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं।

व्यावसायिक वातावरण की विशेषताएं

- (1) **बाह्य शक्तियों की समग्रता** :- व्यवसायिक वातावरण व्यावसायिक संस्था के बाहर की शक्तियों/घटकों का योग होता है जिनकी प्रकृति सामूहिक होती है।
- (2) **विशिष्ट एवं साधारण शक्तियाँ** :- व्यावसायिक पर्यावरण में विशिष्ट तथा साधारण दोनों शक्तियाँ सम्मिलित होती हैं। विशिष्ट शक्तियों में ग्राहक, प्रतियोगी, निवेशक आदि आते हैं जो उद्यमों को प्रत्यक्ष रूप में प्रभावित करते हैं तथा साधारण शक्तियों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, कानूनी, तकनीकी दशाएं आती हैं जो उद्यमों को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं।
- (3) **आंतरिक संबंध** :- व्यावसायिक वातावरण के विभिन्न तत्व/भाग एक-दूसरे से घनिष्ट रूप से जुड़े होते हैं। अतः उनमें आंतरिक संबंध होता है।
- (4) **गतिशील** :- व्यावसायिक पर्यावरण गतिशील होता है जो तकनीकी विकास, उपभोक्ताओं की रुचि तथा फैशन के अनुसार बदलता है।
- (5) **अनिश्चितता** :- व्यावसायिक पर्यावरण अनिश्चित होता है क्योंकि भविष्य में होने वाले पर्यावरणीय परिवर्तनों तथा उनके प्रभावों का पूर्वानुमान लगाना सम्भव नहीं है।
- (6) **जटिलता** :- व्यावसायिक पर्यावरण एक जटिल तथ्य है जिसको अलग-अलग हिस्सों में समझना सरल है परन्तु समग्र रूप में समझना कठिन है।
- (7) **तुलनात्मकता** :- व्यावसायिक पर्यावरण एक तुलनात्मक अवधारणा है जिसका प्रभाव भिन्न-भिन्न देशों एवं क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न होता है।

व्यवसायिक पर्यावरण का महत्व

- (1) **अवसरों की पहचान तथा पहल के लाभ** :-

व्यवसायिक पर्यावरण के सही अध्ययन से एक उद्यम उपलब्ध लाभकारी अवसरों की पहचान कर सकता है तथा अपने प्रतियोगियों से पहले उन अवसरों से लाभ उठा सकता है।

(2) खतरो की पहचान :-

व्यावसायिक पर्यावरण की सही जानकारी, एक उद्यम को उन खतरों की पहचान में सहायता करता है जो इसके परिचालन में बाधक हो सकते हैं।

(3) संसाधन का प्रयोग :-

व्यावसायिक पर्यावरण द्वारा उद्यम को विभिन्न संसाधन जैसे पूंजी, श्रम, मशीन, कच्चा माल आदि उपलब्ध कराये जाते हैं संसाधनों की उपलब्धता का पता लगाने तथा उन्हें आवश्यकता अनुसार प्राप्त करने के लिए भी व्यावसायिक पर्यावरण की जानकारी अनिवार्य है।

(4) परिवर्तनों का सामना करना :-

लगातार व्यावसायिक पर्यावरण के अध्ययन से होने वाले परिवर्तनों का पता चलता है जिससे उनका सामना किया जा सकें।

(5) नियोजन एवं नीति निर्धारण में सहायता :-

व्यावसायिक पर्यावरण की समझ एवं विश्लेषण नियोजन एवं नीति निर्धारण में सहायता करते हैं।

(6) निष्पादन में सुधार :-

व्यावसायिक पर्यावरण का सही अध्ययन एक उद्यम के निष्पादन में सुधार कर सकता है तथा उसे दीर्घकाल तक सफल बना सकता है।

व्यावसायिक पर्यावरण के आयाम/तत्व

(1) आर्थिक पर्यावरण :- आर्थिक वातावरण का व्यवसाय पर प्रत्यक्ष प्रभाव होता है। व्याज की दर, मूल्य वृद्धि दर, लोगों की आय में परिवर्तन आदि कुछ आर्थिक तत्व हैं जो व्यवसायिक उद्यमों को प्रभावित कर सकते हैं। आर्थिक वातावरण जहाँ अवसर उपलब्ध कराता है वही इसके द्वारा अनेक बाधाएं भी खड़ी की जा सकती हैं।

(2) सामाजिक पर्यावरण :- सामाजिक पर्यावरण में सामाजिक शक्तियां जैसे रीति-रिवाज, मूल्य, सामाजिक बदलाव, जीवन-शैली आदि सम्मिलित होती हैं। सामाजिक पर्यावरण में होने वाले बदलाव व्यवसाय को शीघ्र प्रभावित करते हैं। इसके कारण जहां व्यवसाय को विभिन्न अवसर मिलते हैं वहीं खतरे भी होते हैं। उदाहरण आज लोगो द्वारा अपने स्वास्थ्य पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है जिसके कारण कुछ वस्तुओं जैसे डायट पेय पदार्थ, मिनरल वाटर आदि की मांग बढ़ गई है परन्तु कुछ अन्य वस्तुओं जैसे तबाकू, वशा युक्त भोजन की मांग कम हो गई है।

(3) प्रौद्योगिकीय/तकनीकी पर्यावरण :- तकनीकी पर्यावरण द्वारा उत्पादन की नई तकनीक एवं पद्धतियां उपलब्ध कराई जाती हैं। व्यवसायी को उद्योग में होने वाले तकनीकी परिवर्तनों पर गहरी दृष्टि रखनी चाहिए क्योंकि ये परिवर्तन प्रतियोगियों का सामना करने तथा उत्पाद की गुणवत्ता सुधारने के

लिए अनिवार्य होते हैं।

(4) राजनीतिक/राजनैतिक पर्यावरण :- राजनैतिक स्थितियों में बदलाव के कारण भी व्यवसायिक संस्थाएँ प्रभावित होती हैं। राजनैतिक स्थिरता, व्यवसायियों में आत्मविश्वास पैदा करती है जबकि राजनैतिक अशांति एवं खराब कानून व्यवस्था, व्यावसायिक क्रियाओं में अनिश्चिता ला सकती है। राजनीतिक पर्यावरण का व्यापारिक लेनदेनों पर शीघ्र प्रभाव पड़ता है इसलिए व्यवसायी को वातावरण का अध्ययन बहुत सावधानी से करना चाहिए ताकि संगठन में आवश्यक परिवर्तन किये जा सकें।

(5) विधिक/कानूनी पर्यावरण :- विधिक पर्यावरण में सरकार द्वारा पारित विभिन्न विधेयक, प्रशासनिक आदेश, न्यायालयों के फैसले तथा विभिन्न सरकारी कमीशन एवं एजेंसियों के निर्णय सम्मिलित होते हैं। व्यवसायी को इनका पालन करना होता है। अतः कानून की जानकारी आवश्यक होती है।

आर्थिक सुधार

आर्थिक सुधारों के अंग के रूप में भारत सरकार ने 1991 में नयी औद्योगिक नीति की घोषणा की। जिसके प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार हैं।

- (1) अनिवार्य लाइसेंसिंग के वर्ग में केवल छः उद्योगों को रखा गया।
- (2) सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका केवल चार उद्योगों तक सीमित कर दी गई।
- (3) सार्वजनिक क्षेत्र के औद्योगिक उद्यमों में विनिवेश की प्रक्रिया को लागू किया गया।
- (4) विदेशी पूंजी की नीति को उदार बनाया गया तथा कई क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को 100 प्रतिशत की छूट दे दी गई।
- (5) विदेशी कंपनियों के साथ प्रौद्योगिकी समझौतों के लिए स्वचल की छूट दे दी गई।
- (6) भारत में विदेशी निवेश बढ़ाने के लिए विदेशी निवेश प्रवर्तन बोर्ड की स्थापना की गई।

नई औद्योगिक नीति का मुख्य उद्देश्य लाइसेंस प्रणाली के बंधन से उद्योगों को मुक्त करना (उदारीकरण) सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका को कम करना (निजीकरण) तथा भारत के औद्योगिक विकास में विदेशी निजी क्षेत्र की भागीदारी को प्रोत्साहन देना (वैश्वीकरण) था।

उदारीकरण :- इसका आशय भारतीय व्यवसाय एवं उद्योग को अनावश्यक नियंत्रण एवं प्रतिबंधों से मुक्त करने से है। इसका मुख्य उद्देश्य कुछ उद्योगों को छोड़ कर अधिकांश में लाइसेंस की आवश्यकता को समाप्त करना था, वस्तु एवं सेवाओं के स्थानांतरण में प्रतिबन्धों को हटा लेना, मूल्य निर्धारण की स्वतंत्रता देना, आयात-निर्यात प्रक्रिया को सरल करना आदि थे।

निजीकरण :- इसका आशय राष्ट्र निर्माण में निजी क्षेत्र की भूमिका में बढ़ोत्तरी करना तथा सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका को कम करने से है।

वैश्वीकरण :- इसका अर्थ है विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं का एकजुट हो जाना जिससे एक सम्मिलित वैश्विक अर्थव्यवस्था का उदय हो सके। यह विश्व की अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक एकीकरण तथा आर्थिक अन्तर्निर्भरता की एक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से विभिन्न देशों में पारस्परिक लेन-देन में वृद्धि होगी।

व्यवसाय एवं उद्योग पर सरकारी नीतियों में परिवर्तन का प्रभाव

- (1) **प्रतियोगिता में वृद्धि :-** लाइसेंस में छूट के कारण तथा भारतीय बाजार में विदेशी फर्मों के प्रवेश के कारण भारतीय फर्मों के लिए प्रतियोगिता में वृद्धि हुई है।
- (2) **अधिक मांग करने वाले ग्राहक :-** आज का ग्राहक जागरूक है तथा वह बाजार की अधिक से अधिक जानकारी रखता है जिसके कारण बाजार क्रेता - अभिमुखी बन गये हैं। ग्राहकों को आज गुणवत्ता वाली वस्तु एवं सेवाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं तथा उन्हें चयन के अवसर भी अधिक प्राप्त होते हैं।
- (3) **प्रौद्योगिकी/तकनीकी पर्यावरण में तेजी से परिवर्तन :-** तकनीकी विकास के कारण उत्पादन प्रक्रिया में तेजी से सुधार हो रहा है जिसके कारण कम से कम लागत पर अधिक से अधिक उत्पादन हो पा रहा है। परन्तु तकनीकी बदलाव के कारण छोटी फर्मों के सामने अनेक कठिनाइयाँ तथा चुनौतियाँ आ रही हैं।
- (4) **परिवर्तन की आवश्यकता :-** नई आर्थिक नीति के बाद से बाजार शक्तियाँ मांग तथा पूर्ति अधिक तेजी से बदल रही हैं। व्यावसायिक वातावरण के विभिन्न घटकों में तेजी से हो रहे परिवर्तनों के कारण फर्मों को भी अपने प्रचालन में निरंतर बदलाव/संशोधन करना पड़ता है।
- (5) **मानव संसाधनों के विकास की आवश्यकता :-** आज के बदलते परिवेश में उच्च क्षमतावान तथा अधिक प्रतिबद्ध लोगों की मांग बढ़ रही है। अतः मानव संसाधनों के विकास की आवश्यकता हो गयी है जिससे उनकी कार्यक्षमता तथा उत्पादिकता में वृद्धि हो सके।
- (6) **बाजार अभिविन्यास :-** पहले बाजार में बिक्री अवधारणा प्रचलित थी परन्तु आज विपणन अवधारणा का बोल बाला है। आज उत्पादक द्वारा बाजार शोध के माध्यम से ग्राहकों की आवश्यकताओं का पहले पता लगाया जाता है तथा फिर उन आवश्यकताओं के आधार पर उत्पादन किया जाता है।
- (7) **सार्वजनिक क्षेत्र को बजटीय समर्थन का अभाव :-** आज सरकार द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र को दिया जाने वाला बजटीय समर्थन कम होता जा रहा है जिससे इस क्षेत्र में कार्यरत फर्में स्वयं आवश्यक संसाधन एकत्रित करे तथा अपनी कुशलता भी बढ़ाये ताकि उनका विकास हो सके।

1 अंक वाले प्रश्न

1. किस औद्योगिक नीति में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था के दरवाजे खोल दिये हैं? (औद्योगिक नीति - 1991)

2. किस वातावरण के अन्तर्गत रूचि, फैशन और प्रवृत्ति में परिवर्तन होते हैं? (सामाजिक वातावरण)
3. व्यवसाय और उद्योग पर सरकारी नीति में परिवर्तनों के किन्ही दो प्रभावों का वर्णन करो।
 - (1) प्रतिस्पर्धा में वृद्धि (2) विश्व स्तरीय तकनीक
- (4) गुजरात में नैनो कार को पुनः स्थापित करना वातावरण के किस घटक को दर्शाता है?
- (5) व्यवसायिक वातावरण के आयाम लिखिए?

3/4 अंक वाले प्रश्न

- (6) “वातावरण रूकावटें और अवसर प्रदान करता है”? एक उदाहरण की सहायता से स्पष्ट कीजिए?
- (7) “कम्पनियाँ जो अपने वातावरण को अपनाने में असफल रहती हैं, लम्बे समय तक कायम नहीं रहती हैं” उदाहरण के साथ स्पष्ट कीजिए?
- (8) आर्थिक वातावरण सामाजिक वातावरण से अलग कैसे है?

5/6 अंक वाले प्रश्न

- (9) बैंकिंग क्षेत्रीय सुधार ने आसान उधार शर्तें और बेहतर सेवाएँ प्रदान की हैं। यह व्यवसायिक वातावरण के मुख्य घटकों में से एक का उदाहरण है। इस घटक का नाम लिखिए और संक्षिप्त में इसकी व्याख्या कीजिए।
- (10) नई औद्योगिक नीति कब प्रस्तावित की गई? इसके पीछे मुख्य लक्ष्य क्या था? उस नीति की व्याख्या कीजिए?

अध्याय 4

नियोजन

अर्थ :- नियोजन पूर्व में ही यह निश्चित कर लेना है कि क्या करना है - कब करना है तथा किसे करना है। नियोजन हमेशा कहाँ से कहाँ तक जाना है के बीच के रिक्त स्थान को भरता है। यह प्रबन्ध के आधारभूत कार्यों में से एक है। इसके अन्तर्गत उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए एक कार्य-विधि का निर्माण किया जाता है।

नियोजन का महत्व :-

(1) **नियोजन, निर्देशन की व्यवस्था करता है :-** कार्य कैसे किया जाना है इसका पहले से ही मार्ग दर्शन करा कर नियोजन निर्देशन की व्यवस्था करता है। यह पूर्व निर्धारित क्रियाविधि से संबंधित होता है

(2) **नियोजन अनिश्चितता के जोखिम को कम करता है :-** नियोजन एक ऐसी क्रिया है जो प्रबन्धकों को भविष्य में झांकने का अवसर प्रदान करती है। ताकि गैर-आशान्वित घटनाओं के प्रभाव को घटाया जा सकें।

(3) **नियोजन अपव्ययी क्रियाओं को कम करता है :-** नियोजन विभिन्न विभागों एवं व्यक्तियों के प्रयासों में तालमेल स्थापित करता है जिससे अनुपयोगी गतिविधियाँ कम होती हैं।

(4) **नियोजन नव प्रवर्तन विचारों को प्रोत्साहित करता है :-** नियोजन प्रबन्धकों का प्राथमिक कार्य है इसके द्वारा नये विचार योजना का रूप लेते हैं। इस प्रकार नियोजन प्रबन्धकों को नवीकीकरण तथा सृजनशील बनाता है।

(5) **नियोजन निर्णय लेने को सरल बनाता है :-** प्रबन्धक विभिन्न विकल्पों का मूल्यांकन करके उनमें से सर्वोत्तम का चुनाव करता है। इसलिए निर्णयों को शीघ्र लिया जा सकता है।

(6) **नियोजन नियन्त्रण के मानकों का निर्धारण करता है :-** नियोजन वे मानक उपलब्ध कराता है जिसके विरुद्ध वास्तविक निष्पादन मापे जाते हैं तथा मूल्यांकित किए जाते हैं। नियोजन के अभाव में नियन्त्रण अंधा है अतः नियोजन नियन्त्रण का आधार प्रस्तुत करता है।

नियोजन की विशेषताएं :-

(1) **नियोजन का केन्द्र बिन्दु लक्ष्य प्राप्ति होता है :-** नियोजन का कार्य उद्देश्य निर्धारण से शुरू होता है एक बार उद्देश्य निर्धारित हो जाये तो अगला कदम उन उद्देश्यों को प्राप्त करना होता है।

(2) **नियोजन प्रबन्ध का प्राथमिक कार्य है :-** नियोजन संगठन, निर्देशन एवं नियन्त्रण की अगुवाई करता है यह प्रबन्ध के अन्य सभी कार्यों के लिए आधार प्रस्तुत करता है।

(3) **नियोजन सर्वव्यापी है** :- नियोजन सभी प्रकार के संगठनों तथा प्रबन्ध के सभी स्तरों पर आवश्यक है। परन्तु नियोजन का क्षेत्र विभिन्न स्तरों एवं विभागों में भिन्न-भिन्न होता है।

(4) **नियोजन सतत् व अवतरित है** :- नियोजन लगातार चलने वाली प्रक्रिया है। क्योंकि परिवर्तनीय वातावरण के अनुसार योजनाओं का अद्यतन तथा पुनरीक्षण किया जाता है।

(5) **नियोजन भविष्यवादी है** :- नियोजन वर्तमान में यह निश्चित करता है कि भविष्य में क्या करना है। नियोजन संभावित भविष्य में उत्पन्न होने वाली स्थितियों के बारे में सोचने की गतिविधि होती है।

(6) **नियोजन एक मानसिक अभ्यास है** :- नियोजन में रचनात्मक सोच एवं कल्पनाशीलता होती है अतः यह एक मानसिक क्रिया है।

नियोजन की सीमाएँ :-

(1) **नियोजन दृढ़ता उत्पन्न करता है** :- एक लक्ष्य को एक निश्चित समय में पाने के लिए योजनाएं तैयार की जाती हैं जो कि कार्य करने की विधि निर्धारित करती हैं इससे नियोजन में दृढ़ता आती है।

(2) **परिवर्तनशील वातावरण में नियोजन प्रभावी नहीं रहता** :- व्यवसायिक वातावरण परिवर्तनशील है यहां कुछ भी स्थायी नहीं है। वातावरण में विद्यमान आयामों में होने वाले परिवर्तनों के अनुरूप प्रत्येक संगठन को व्यवहार करना पड़ता है।

(3) **नियोजन रचनात्मकता को कम करता है** :- नियोजन उच्च प्रबन्ध द्वारा बनाई जाती है जो अन्य स्तरों की रचनात्मकता को कम करता है।

(4) **नियोजन में भारी लागत आती है** :- धन एवं समय के रूप में नियोजन में ज्यादा लागत आती है।

(5) **नियोजन समय नष्ट करने वाली प्रक्रिया है** :- कभी कभी योजनाएँ तैयार करने में इतना समय लगता है कि उन्हें लागू करने के लिए समय नहीं बचता है।

(6) **नियोजन सफलता का आश्वासन नहीं है।**

नियोजन प्रक्रिया :-

(1) **उद्देश्यों का निर्धारण** :- नियोजन प्रक्रिया में पहला कदम उद्देश्यों का निर्धारण करना है। उद्देश्य पूरे संगठन या विभाग के हो सकते हैं।

(2) **परिकल्पनाओं का विकास करना** :- नियोजन भविष्य से सम्बन्धित होता है तथा भविष्य अनिश्चित होता है। इसलिए प्रबन्धकों को कुछ पूर्व कल्पनाएं करनी होती हैं। यह परिकल्पनाएं कहलाती हैं। नियोजन में पूर्व कल्पनाओं में बाधाओं, समस्याओं आदि पर ध्यान दिया जाता है।

(3) **कार्यवाही की वैकल्पिक विधियों की पहचान** :- उद्देश्य निर्धारण होने के बाद उन्हें प्राप्त करने के लिए विभिन्न विकल्पों की पहचान की जाती है।

(4) **विकल्पों का मूल्यांकन** :- प्रत्येक विकल्प के गुण व दोष की जानकारी प्राप्त करना। विकल्पों का मूल्यांकन उनके परिणामों को ध्यान में रखकर किया जाता है।

(5) **विकल्पों का चुनाव** :- तुलना व मूल्यांकन के बाद संगठन के उद्देश्यों तक पहुँचने के लिए बेहतरीन विकल्प चुना जाता है।

(6) **योजना को लागू करना** :- एक बार योजनाएं विकसित कर ली जाए तो उन्हें क्रिया में लाया जाता है।

(7) **अनुवर्तन** :- यह देखना की योजनाएं लागू की गई या नहीं। योजनाओं के अनुसार कार्य चल रहा है या नहीं।

योजनाओं के प्रकार :-

(1) **उद्देश्य** :- नियोजन में सब से पहला कार्य उद्देश्यों का निर्धारण करना है। उद्देश्य प्रबन्ध का वह गन्तव्य स्थान है जहाँ उसे भविष्य में पहुँचना है।

(2) **व्यूह रचना** :- व्यूह रचना से तात्पर्य है भविष्य के निर्णय जो लम्बे समय में संगठन के निर्देशन व विस्तार की व्याख्या करते हैं।

(3) **नीति** :- नीतियाँ सामान्य कथन हैं जो विचारों का मार्ग दर्शन अथवा एक विशिष्ट दिशा में अग्रसर होने के लिए मार्ग प्रशस्त करती हैं विक्रय नीति के रूप में “हम उधार विक्रय नहीं करते” नीति का एक उदाहरण है।

(4) **कार्य विधि** :- कार्य विधि से तात्पर्य दैनिक गतिविधियों के संचालन से है।

(5) **नियम** :- विशिष्ट विवरण है जो बताते हैं क्या करना है उदाहरण धूम्रपान मना है” एक नियम है।

(6) **कार्यक्रम** :- कार्यक्रम उद्देश्यों नीतियों, प्रक्रिया तथा नियमों का संयोग होते हैं। सभी योजनाएँ एक साथ मिलकर कार्यक्रम बनाती हैं।

(7) **बजट** :- बजट अनुमानित परिणामों का विवरण है जिन्हें भविष्य के निश्चित समय अंतराल के लिए गणितीय शब्दों में व्यक्त किया जाता है।

(क) अतिलघु स्तरीय प्रश्न :- (1 अंक वाले प्रश्न)

(1) नियोजन को परिभाषित कीजिए।

(2) कार्यविधि से क्या अभिप्रायः है।

(3) नियम को परिभाषित कीजिए।

(4) बजट का अर्थ बताइये।

(5) नीति एवं कार्य विधि में एक अन्तर बताइये।

(6) प्रबन्ध का एक कार्य अन्य कार्य का आधार माना जाता है उस कार्य का नाम बताइये?

- (7) नियोजन के किस प्रकार में प्रतियोगियों की चाल को ध्यान में रखा जाता है।
- (8) “कारखाने में धूम्रपान निषेध” यह कथन योजनाओं के किस प्रकार से सम्बन्धित है।
- (9) “हम उधार विक्रय नहीं करते” यह कथन योजनाओं के किस प्रकार से सम्बन्धित है।
- (10) व्यूह रचना से क्या अभिप्राय है।

(ख) लघुस्तरीय प्रश्न :- (3/4 अंक वाले)

- (11) “नियोजन प्रबन्ध का हृदय है” कैसे
- (12) “नियोजन के अभाव में नियन्त्रण अन्धा है? कैसे
- (13) किस तरह नियोजन नियन्त्रण को आधार प्रदान करता है?
- (14) नियम एवं नीतियों में अन्तर बताइयें?
- (15) नीति एवं प्रक्रिया में क्या अन्तर है?

(ग) दीर्घस्तरीय प्रश्न (5/6 अंक वाले)

- (16) किन्हीं चार प्रकार की योजनाओं का वर्णन कीजिए?
- (17) प्रबन्ध के भरसक प्रयासों के बावजूद कई बार नियोजन असफल क्यों हो जाता है?
- (18) नियोजन संगठन को सही राह पर रखता है? इस संदर्भ में नियोजन का महत्व बताइये?
- (19) नियोजन की विशेषताओं का वर्णन कीजिए?
- (20) नियोजन की सीमाओं का वर्णन कीजिए?
- (21) नियोजन प्रक्रिया के चरणों की व्याख्या कीजिए?

अध्याय 5

संगठन

संगठन का अर्थ :- योजनाओं तथा उद्देश्यों के निर्धारण के पश्चात प्रबन्धकों द्वारा किया जाने वाला अगला कार्य संगठन करना होता है। संगठन कार्य यह निर्धारित करता है कि किन गतिविधियों तथा किन संसाधनों की आवश्यकता है तथा किस कार्य विशेष को कौन करेगा तथा इसे कहाँ किया जाएगा। संगठन एक प्रक्रिया है जो कार्य को समझने तथा वर्गीकरण करने, अधिकार अंतरण को परिभाषित करने तथा मनुष्यों को अत्याधिक कार्य कुशलता के साथ, लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कार्य करने के लिए संबंध स्थापित करता है। संगठन का आशय उत्पादन के विभिन्न घटकों में संबंध स्थापित करने से लगाया जाता है। संगठन को कृत्यों, खण्डों, विभागों तथा स्थितियों के मध्य अर्तसम्बन्ध करने से सम्बन्धित माना जाता है।

संगठन प्रक्रिया के चरण

(1) **कार्य की पहचान तथा विभाजन** :- इसमें पूर्व निर्धारित योजनाओं के अनुरूप किये जाने वाले विशिष्ट कार्यों की पहचान करना तथा उनका विभाजन करना होता है। कार्य का विभाजन करते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि सभी गतिविधियाँ संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु हो। यह कार्यकौशल में विशेषज्ञता लाता है।

(2) **विभागीकरण** :- इसमें एक समान क्रियाओं को एक विशेष विभाग को सौंप दिया जाता है। जैसे -कच्चा माल क्रय करना, तैयार पुर्जे क्रय करना, आदि का क्रय विभाग, उत्पादन करना, माल का स्टॉक करना आदि क्रियाओं को उत्पादन विभाग को सौंपा जाता है। इसका उद्देश्य समन्वय स्थापित करना होता है।

(3) **कर्त्तव्यों का निर्धारण** :- विभागों के बन जाने के बाद प्रत्येक विभाग को जिसे विभागीय अध्यक्ष कहते हैं के आधीन किया जाता है। काम सौंपते समय काम की प्रकृति तथा व्यक्ति की योग्यता का मिलान करना आवश्यक है।

(4) **रिपोर्टिंग संबंध स्थापित करना** :- जब दो या अधिक व्यक्ति एक समान उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कार्य करते हैं तो उनके मध्य संबंधों की स्पष्ट व्याख्या की जानी जरूरी है। प्रत्येक व्यक्ति को यह पता होना चाहिए कि कौन उसका अधिकारी तथा कौन अधीनस्थ है।

संगठन का महत्व :-

1. **विशिष्टीकरण का लाभ** :- संगठन के अंतर्गत सम्पूर्ण कार्यों को अनेक उपकार्यों में बाँट दिया जाता है। सभी उपकार्यों पर योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति की जाती है जो एक ही कार्य को बार-बार करके उसके विशेषज्ञ बन जाते हैं। जिससे कार्य ठीक और तेजी से होता है।

2. कार्य संबंधों में स्पष्टता :- संगठन कर्मचारियों के मध्य संबंधों को स्पष्ट करता है। इससे स्पष्ट होता है कि कौन किसको रिपोर्ट करेगा। इसमें उच्चाधिकारियों तथा अधीनस्थों के संबंधों को स्पष्ट किया जाता है।

3. संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग :- संगठन प्रक्रिया में कुल काम को अनेक छोटी-छोटी क्रियाओं में विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक क्रिया को करने वाला एक अलग कर्मचारी होता है परिणामतः संगठन में उपलब्ध सभी संसाधनों का कुशलतम उपयोग होता है।

4. परिवर्तन में सुविधा :- संगठन प्रक्रिया एक संस्था को इस योग्य बना देती है कि वह कर्मचारियों के पद से संबंधित किसी भी परिवर्तन को आसानी से सहन कर लेती है।

5. प्रभावी प्रशासन :- प्रायः देखा जाता है कि प्रबन्धकों में अधिकारों को लेकर भ्रम की स्थिति बनी रहती है। संगठन प्रक्रिया प्रत्येक प्रबन्धक द्वारा की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं व प्राप्त अधिकारों का स्पष्ट उल्लेख करती है।

6. कर्मचारियों का विकास :-स्वतंत्र एवं प्रभावी संगठन कर्मचारियों में पहल शक्ति तथा सृजनशील सोच को प्रेरित करता है।

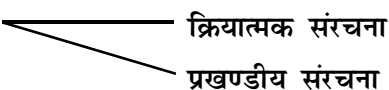
7. विस्तार तथा वृद्धि :- संगठन कार्य व्यावसायिक उपक्रमों को अपना आकार बढ़ाने की प्रेरणा देता है। यह उपक्रम की वृद्धि तथा विविधीकरण में सहायता करता है।

संगठन ढाँचा :- संगठन प्रक्रिया जिस संरचना का सृजन करती है उसे संगठनात्मक संरचना कहते हैं। इसके अंतर्गत संगठन के अनेक पद स्थापित किये जाते हैं और सभी पदों पर कार्य करने वाले लोगों के सम्बन्धों को स्पष्ट कर दिया जाता है। संरचना द्वारा प्रबन्धकों व अन्य कर्मचारियों को कार्य के सम्बन्ध में एक आधार व रूपरेखा उपलब्ध करायी जाती है।

संगठन एक ढांचागत फ्रेमवर्क है जिसके अंतर्गत विभिन्न क्रियाओं को समन्वित तथा एक दूसरे से संबंधित किया जाता है।

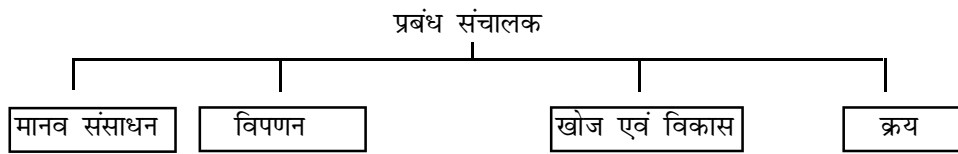
प्रबन्ध विस्तृति तथा संगठनात्मक ढांचे के बीच संबंध प्रबन्ध विस्तृति से तात्पर्य अधीनस्थों की उस संख्या से है। जिनका अधिकारी कुशलता के साथ प्रबन्ध कर लेते हैं। प्रबन्ध की विस्तृति काफी हद तक संगठनात्मक ढांचे को आकार देती है। यह ढांचे में प्रबन्ध के स्तरों को निश्चित करती है।

संगठनात्मक संरचना के प्रकार :-



- क्रियात्मक संरचना
- प्रखण्डीय संरचना

(1) क्रियात्मक संगठन ढाँचा :- पूरी संस्था को उसके द्वारा की जाने वाली मुख्य क्रियाओं/कार्यों (जैसे उत्पादन, विपणन, खोज एवं विकास, वित्त आदि) के आधार पर विभक्त करने को कार्यात्मक संगठन ढाँचा कहते हैं।



लाभ :-

- (1) **विशिष्टकरण :-** जब कार्यों को कार्य के प्रकार के आधार पर समूहों में रखा जाता है तो सभी कार्य केवल एक प्रकार के होते हैं। इस प्रकार कम समय में अधिक व अच्छा काम किया जाता है। इससे विशिष्टकरण के लाभ प्राप्त होते हैं।
- (2) **समन्वय की स्थापना :-** एक विभाग में काम करने वाले सभी व्यक्ति अपनी-अपनी जॉब के विशेषज्ञ होते हैं। इससे विभागीय स्तर पर समन्वय स्थापित करने में आसानी रहती है।
- (3) **प्रबन्धकीय कुशलता में वृद्धि :-** एक ही काम को बार-बार किया जाता है इसलिए प्रबन्धकीय कुशलता में वृद्धि होती है।
- (4) **प्रयत्नों की न्यूनतम दोहराई :-** संगठन के इस प्रारूप में प्रयत्नों की अनावश्यक दोहराई समाप्त हो जाती है।

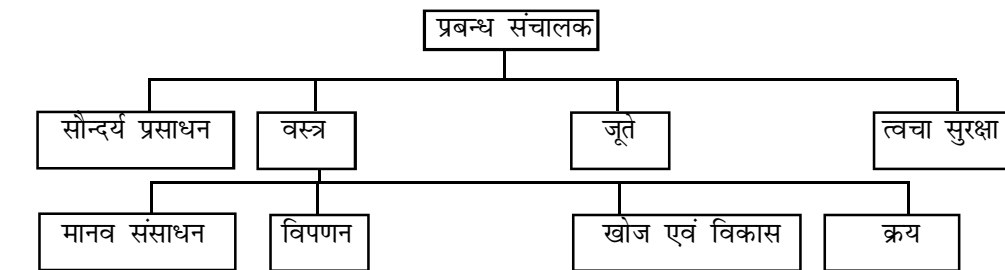
हानियाँ :-

1. **संगठनात्मक उद्देश्यों की अवहेलना :-** प्रत्येक विभागीय अध्यक्ष अपनी इच्छानुसार काम करता है। वे हमेशा अपने विभागीय उद्देश्यों को ही महत्व देते हैं अतः संगठनात्मक उद्देश्यों की हानि होती है।
2. **अंतर्विभागीय समन्वय में कठिनाई :-** सभी विभागीय अध्यक्ष अपनी-अपनी मर्जी से काम करते हैं। इससे विभाग के अन्दर समन्वय स्थापित होते हैं परन्तु अंतर्विभागीय समन्वय कठिन हो जाता है।
3. **सम्पूर्ण विकास में बाधा-** यह कर्मचारियों के पूर्ण विकास में रूकावट है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक कर्मचारी कुल जॉब के एक छोटे से भाग का विशेषज्ञ बन पाता है।

उपयोगिता :-

1. जहाँ व्यवसाय इकाई का आकार बड़ा हो।
2. जहाँ विशिष्टकरण आवश्यक है।
3. जहाँ मुख्य रूप से एक ही उत्पाद बेचा जाता हो।

प्रभागीय संगठन ढाँचा :- पूरी संस्था को उसके द्वारा उत्पादित किया जाने वाले उत्पादों (जैसे :- मेटल उत्पाद, प्लास्टिक उत्पाद आदि)के आधार पर विभक्त करने को प्रभागीय संगठन ढाँचा कहते हैं।



- लाभ :-**
1. **डिविजनल अध्यक्षों का विकास :-** प्रत्येक डिविजनल अध्यक्ष अपने उत्पादन से संबंधित सभी कार्य देखता है। इससे एक डिविजनल अध्यक्ष में विभिन्न कौशल विकसित होते हैं।
 2. **डिविजनल परिणामों को आंका जा सकता है :-** इसी आधार पर अलाभदायक डिविजन को बंद करने का निर्णय लिया जा सकता है।
 3. **शीघ्र निर्णय :-** एक डिविजन का प्रबन्धक अपने डिविजन के बारे में स्वतंत्र रूप से निर्णय ले सकता है।

हानियाँ :- 1. **डिविजनल अध्यक्षों के मध्य संघर्ष उत्पन्न करती है** क्योंकि वे अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहते हैं।

2. **कार्यों की दोहराई :-** प्रत्येक डिविजन के लिए सभी क्रियाएं की जाती हैं इससे कार्यों की अनावश्यक दोहराई होती है।
3. **स्वार्थी प्रवृत्ति :-** प्रत्येक डिविजन का यह प्रयत्न रहता है कि वह बढ़िया प्रदर्शन करे। इससे पूरी संस्था के हितों को ठेस पहुँचती है। क्योंकि अन्य डिविजनों के हितों को अनदेखा कर दिया जाता है।

उपयोगिता :-

1. जहाँ मुख्य उत्पादों की संख्या एक से अधिक हो।
2. जहाँ संस्था का आकार काफी बड़ा हो।

औपचारिक संगठन :- का आशय ऐसी संरचना से है जिसे संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रबन्ध द्वारा तैयार किया जाता है। इसमें कार्यरत व्यक्तियों के उत्तरदायित्वों/अधिकारों एवं पारस्परिक संबंधों को स्पष्टतः परिभाषित कर दिया जाता है। औपचारिक संगठन में संरचना क्रियात्मक या प्रखण्डीय हो सकती है।

लक्षण :-

1. इसमें परिभाषित आपसी संबंध होता है। इसे उच्च प्रबंध द्वारा वैचारिक रूप से बनाया जाता है।
2. यह नियमों एवं कार्यविधियों पर आधारित होता है।
3. यह कार्य विभाजन पर आधारित होता है।
4. यह जानबूझ कर स्थापित किया जाता है।
5. यह अव्यक्तिगत होता है अर्थात् इसमें व्यक्ति का नहीं काम का महत्व होता है।
6. यह अधिक स्थिर होता है।

लाभ :-

1. उत्तरदेयता निर्धारण में आसानी क्योंकि सभी कर्मचारियों के अधिकार एवं उत्तरदायित्व निश्चित होते हैं।
2. कार्यों का दोहराव नहीं होता।

3. आदेश की एकता का पालन करना संभव है।
4. लक्ष्यों को प्राप्त करने में आसानी होती है।
5. संगठन में स्थिरता रहती है क्योंकि सभी व्यक्ति अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में रहते हुए तथा नियमों का पालन करते हुए कार्य करते हैं।

हानियां :-

1. प्रत्येक कार्य के नियमबद्ध होने के कारण अनावश्यक देरी होती है।
2. पहल क्षमता की कमी आ जाती है क्योंकि कर्मचारियों को वैसा ही करना पड़ता है जैसा उनको निर्देश दिया जाता है।
3. सीमित क्षेत्र :- क्योंकि मानव संबंधो, प्रतिभा आदि की उपेक्षा होती है।

अनौपचारिक संगठन :- ऐसा संगठन जिसकी स्थापना जानबूझ कर नहीं की जाती बल्कि अनायास ही पारस्परिक समान हितों, रुचियों, धर्म एवं संबंधों के कारण हो जाती है।

लक्षण :-

1. औपचारिक संगठन पर आधारित होता है क्योंकि औपचारिक संगठन में काम कर रहे व्यक्तियों के मध्य ही अनौपचारिक संबंध होते हैं।
2. इसके लिखित नियम एवं प्रक्रियाएँ नहीं होती हैं।
3. स्वतंत्र संदेशवाहल श्रृंखला, क्योंकि संदेशवाहल के प्रवाह को स्पष्ट नहीं किया जा सकता।
4. यह जानबूझकर स्थापित नहीं किया जाता है।
5. यह व्यक्तिगत होता है क्योंकि इसमें व्यक्तियों की भावनाओं को ध्यान में रखा जाता है।

लाभ :- 1. प्रभावपूर्ण संदेशवाहन :- इसके माध्यम से संदेश, अतिशीघ्र एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाये जा सकते हैं।

2. सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है क्योंकि समूह के सभी सदस्य संगठनात्मक व व्यक्तिगत मुद्दों पर एक दूसरे का साथ देते हैं।
3. संगठनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति :- इसमें अधीनस्थ बिना किसी डर के अपनी बात अपने अधिकारियों को कह देते हैं जिससे अधिकारियों को उनकी कठिनाइयों को जानने में सहायता मिलती है।

हानियां :- 1. यह अफवाहें फैलाता है क्योंकि सभी व्यक्ति लापरवाही से बातचीत करते हैं कई बार गलत बात एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक फैल जाती है।

2. यह परिवर्तन का विरोध करता है और पुरानी पद्धतियों को ही लागू रखने पर जोर देता है।
3. सामूहिक हितों की पहल :- यह सदस्यों पर दबाव बनाता है कि समूह की उम्मीदों को सुनिश्चित करें।

औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन में अंतर

| आधार | औचारिक संगठन | अनौपचारिक संगठन |
|-----------------------|---|---|
| 1. अर्थ | यह अधिकार तथा उत्तरदायित्व के सुव्यवस्थित ढाँचे को प्रदर्शित करता है। | यह सामाजिक संबंधों का जालतंत्र है जो कि स्वयं उत्पन्न हो जाता है। |
| 2. प्रकृति | कठोर | लोचदार |
| 3. अधिकार | प्रबन्ध के पद के अनुसार अधिकार उत्पन्न होते हैं। | अधिकार व्यक्तिगत गुणों से उत्पन्न होते हैं। |
| 4. नियमों का पालन | नियमों का उल्लंघन करने पर दण्ड दिया जाता है। | कोई दंड नहीं दिया जाता |
| 5. संप्रेषण का प्रवाह | संप्रेषण संपर्क श्रृंखला के द्वारा पूरा होता है। | संप्रेषण का बहाव नियोजित मार्ग से नहीं होता। |

अधिकारण अंतरण/अधिकारों का प्रत्यायोजन भारार्पण : अधिकार अंतरण का अभिप्राय अधीनस्थों को निश्चित सीमाओं के अंतर्गत कार्य करने का अधिकार प्रदान करना है। प्रबन्धक जो प्राधिकार प्रत्यायोजन करता है वह सौंपें गए कार्यों के उचित निष्पादन के संबंध में अपने अधीनस्थों को उत्तरदायी ठहरा सकता है एवं यह सुनिश्चित करने के लिए कि उसके अधीनस्थ कार्य को प्रभावशाली रूप से करते हैं, जवाबदेयता, निर्धारित करता है।

अधिकार अंतरण के तत्व :-

- 1. अधिकार :-** इसका अभिप्राय निर्णय लेने की शक्ति से है। जब तक अधीनस्थों को अधिकार प्रदान न कर दिए जाएं तब तक कार्यभार सौंपना अर्थहीन होता है।
- 2. उत्तरदायित्व :-** इसका अर्थ सौंपें गए काम को ठीक ढंग से पूरा करने की अधीनस्थ की जिम्मेदारी से है। उत्तरदायित्व काम सौंपने पर ही उत्पन्न होता है। अतः काम सौंपने को ही उत्तरदायित्व कहा जा सकता है।
- 3. जवाबदेही/उत्तरदेयता :-** इसका अभिप्राय अधीनस्थ द्वारा कार्य निष्पादन के लिए अधिकारी को जवाब देने से है।

जवाबदेही की निरपेक्षता का सिद्धान्त - अधिकारों का भारार्पण किया जा सकता है किंतु प्रबन्धक द्वारा उत्तरदायित्वों/जवाबदेही का भारार्पण नहीं किया जा सकता। इसके अनुसार किसी अधीनस्थ को सौंपें गए अधिकार वापस लेकर किसी अन्य को भारार्पित किए जा सकते हैं। अधीनस्थ द्वारा की गई किसी गलती के लिए प्रबन्धक अपनी जिम्मेदारियों से बच नहीं सकता।

अधिकार अंतरण का महत्व :-

- 1. प्रभावपूर्ण प्रबन्ध :-** प्रभावपूर्णता का अर्थ है उद्देश्य को सफलतापूर्वक प्राप्त कर लेना। अधिकार अंतरण से प्रबन्धकों के कार्यभार में कमी आती है और वे अधिक महत्वपूर्ण कार्यों जैसे नियोजन/निर्णयन/नियंत्रण आदि पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं।
- 2. कर्मचारियों को प्रेरणा-**जब प्रबन्धक अपने उत्तरदायित्वों एवं अधिकार को अपने अधीनस्थों के साथ बाँटते हैं तो अधीनस्थों में विश्वास की भावना विकसित होती है तथा वे प्रेरित होते हैं।

3. कर्मचारियों का विकास :- अधिकार अंतरण के परिणामस्वरूप कर्मचारियों को अपनी प्रतिभा का प्रयोग करने के ज्यादा अवसर मिलते हैं तथा वे अपनी कुशलताओं का विकास होने देते हैं

4. शीघ्र निर्णयन :- अधीनस्थों को निर्णय लेने के लिए पर्याप्त अधिकार दिए जाते हैं। उन्हें निर्णय के संबंध में बार बार अधिकारियों के पास जाने की आवश्यकता नहीं होती। यह निर्णय को गति प्रदान करता है।

5. उत्तम समन्वय :- अधिकार अंतरण के तत्व-प्राधिकार, उत्तरदायित्व व जवाबदेयता संगठन में विभिन्न उपकार्यों के बारे में अधिकारों, कर्तव्यों तथा जवाबदेयता को परिभाषित करने में सहायक होते हैं। सब कुछ स्पष्ट होने पर उत्तम समन्वय स्वतः ही स्थापित हो जाता है।

अधिकार, उत्तरदायित्व एवं जवाबदेयता में अंतर

| आधार | अधिकार | उत्तरदायित्व | जवाबदेयता |
|-------------------|---|--|--|
| 1. आशय | इसमें आदेश देने का अधिकार होता है। | सुपुर्द किये गए कार्य को करने का दायित्व होता है। | सौंपे गए कार्य के परिणाम के संबंध में जवाबदेयता होती है। |
| 2. उद्भव | यह औपचारिक स्थिति से उत्पन्न होता है। | यह प्रत्यायोजि प्राधिकार से उत्पन्न होता है। | यह उत्तरदायित्व से उत्पन्न होता है। |
| 3. प्रवाह | यह उच्च अधिकारी से अधीनस्थ की ओर नीचे की तरफ जाता है। | यह अधीनस्थ से उच्च अधिकारी की ओर ऊपर की तरफ जाता है। | यह अधीनस्थ से उच्च अधिकारी की ओर उपरिगामी होता है। |
| 4. वापस लिया जाना | इसे सूचना देकर किसी भी समय वापस लिया जा सकता है। | इसे वापस नहीं लिया जा सकता है। | इसे भी वापस नहीं लिया जा सकता है। |

विकेंद्रीकरण :- विकेन्द्रीयकरण का अर्थ केवल उन अधिकारों को छोड़कर जिनको उच्च स्तर पर सुरक्षित रखना जरूरी है शेष सारे अधिकार अधीनस्थों को स्थाई रूप से सौंप देने से है। विकेंद्रीयकरण अधिकार अंतरण का ही एक विस्तृत रूप है। इसके अंतर्गत निर्णय लेने के केन्द्रों में वृद्धि हो जाती है क्योंकि मध्य स्तर एवं निम्न स्तर के प्रबन्धकों को भी महत्वपूर्ण निर्णय लेने के अधिकार प्रदान किए जाते हैं।

केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण :- केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण विभिन्न स्तरों पर प्रबन्धकों के बीच प्राधिकार के वितरण के प्रारूप का प्रतिनिधित्व करता है। केन्द्रीयकरण एक बिन्दु पर या कुछ हाथों में निर्णय लेने की शक्ति के केन्द्रित होने से है। ऐसे संगठन में मध्यम एवं निम्न स्तरीय प्रबन्धकों को बहुत कम अधिकार दिए जाते हैं। कोई भी संगठन पूरी तरह से केन्द्रीयकृत नहीं हो सकता। वे एक साथ विद्यमान रहते हैं। इसमें संतुलन लाने की आवश्यकता होती है। जैसे-जैसे संगठन का आकार

बढ़ता जाता है उसमें निर्णय लेने का विकेन्द्रीयकरण होता जाता है। इस प्रकार इन दोनों की आवश्यकता होती है।

विकेन्द्रीयकरण का महत्व :-

1. **सहायकों में पहल शक्ति का विकास :-** इससे सहायकों में आत्मविश्वास बढ़ता है क्योंकि कर्मचारियों को अधिक स्वतंत्रता एवं प्राधिकार दिये जाते हैं जिससे उनमें पहल शक्ति की भावना बढ़ती है।

2. **शीघ्र निर्णयन :-** सभी प्रबन्धकीय निर्णयों का बोझ कुछ ही व्यक्तियों पर न होकर अनेक व्यक्तियों में बंट जाने के कारण निर्णय शीघ्र लिए जाते हैं।

3. **उच्च प्रबन्ध के कार्यभार में कमी :-** इसके अंतर्गत दैनिक समस्याओं से संबंधित निर्णय लेने के सभी अधिकार अधीनस्थों को सौंप दिए जाते हैं। इससे वे छोटी-छोटी समस्याओं में नहीं उलझे रहते और उनके कार्यभार में काफी कमी हो जाती है।

4. **विकास में सहायक :-** इसके अंतर्गत अधीनस्थों को निर्णय लेने की पूरी स्वतंत्रता प्रदान की जाती है। यह स्थिति अधीनस्थों में उत्तरदायित्व की भावना पैदा करती है तथा वे अच्छे परिणाम प्राप्त करने का प्रयास करते हैं जिससे संगठन का विकास संभव होता है।

5. **बेहतर नियंत्रण :-** यह प्रत्येक स्तर पर कार्य निष्पादन के मूल्यांकन को संभव बनाता है। विभागों को उनके परिणामों के प्रति व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार ठहराया जाता है। प्रबंधक इसका सामना करने के लिए बेहतर नियंत्रण पद्धति को अपनाते हैं।

अधिकार अंतरण एवं विकेन्द्रीयकरण में अंतर :-

| आधार | अधिकार अंतरण | विकेन्द्रीयकरण |
|----------------------------|--|---|
| 1. प्रकृति | यह सभी संस्थाओं में जरूरी होता है अर्थात् इसके अभाव में काम नहीं चल सकता | इसका पाया जाना जरूरी नहीं है अर्थात् इसके आभाव में काम चल सकता है। |
| 2. कार्यवाही की स्वतंत्रता | इसके अंतर्गत अधिकार सौंपने के बाद भी अधिकार सौंपने वाले का अधीनस्थ पर पूरा नियंत्रण रहता है। | इसके अंतर्गत प्राय अधिकार सौंपने वाले का अधीनस्थों पर कोई नियंत्रण नहीं रहता। |
| 3. स्थिति | यह कार्य विभाजन के फलस्वरूप की जाने वाली प्रक्रिया है। | यह उच्च प्रबन्ध द्वारा बनाई गई नीति का परिणाम होता है। |
| 4. क्षेत्र | अधिकार अंतरण अधिकारों के सीमित वितरण को प्रदर्शित करता है इसलिए इसका क्षेत्र सीमित होता है। | यह अधिकारों के व्यापक वितरण को दर्शाता है इसलिए इसका क्षेत्र व्यापक होता है। |
| 5. उद्देश्य | इसका उद्देश्य एक अधिकारी के कार्यभार को कम करना है। | इसका उद्देश्य संगठन में सत्ता का फैलाव करना है। |

1 अंक वाले प्रश्न

- प्रश्न 1 :- संगठन द्वारा प्रभावी प्रशासन कैसे संभव है?
- प्रश्न 2 :- प्रबन्ध के उस कार्य का नाम बताइए जो भौतिक, वित्तीय एवं मानवीय संसाधनों में समन्वय स्थापित कर निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु उनमें उत्पादक संबंध बनाता है।
- प्रश्न 3 :- उस संगठन का नाम बताइए जो समूह परंपराओं द्वारा संचालित होता है।
- प्रश्न 4 :- संगठन चार्ट से क्या अभिप्राय है?
- प्रश्न 5 :- संगठन संरचना से आपका क्या अभिप्राय है?
- प्रश्न 6 :- अंतर्विभागीय समन्वय में कठिनाई किस संगठन ढांचे की एक सीमा है?
- प्रश्न 7 :- अधिकार का क्या अर्थ है?
- प्रश्न 8 :- अधिकार अंतरण का क्या आधार है?
- प्रश्न 9 :- अधिकार अंतरण से 'प्रभावपूर्ण प्रबन्ध' क्यों संभव है?

3 अंक वाले प्रश्न

- प्रश्न 10 :- कार्यात्मक संगठन ढांचा क्या है? इस ढांचे के दो लाभ लिखिए।
- प्रश्न 11 :- जवाबदेही अधिकार से किस प्रकार संबंधित है। स्पष्ट कीजिए?
- प्रश्न 12 :- अधिकार का प्रत्यायोजन अथवा भारार्पण क्यों आवश्यक है?
- प्रश्न 13 :- विकेन्द्रीयकरण की तीन विशेषताएं लिखिए?
- प्रश्न 14 :- संगठन प्रक्रिया के तीन चरण लिखिए?

4/5 अंक वाले प्रश्न

- प्रश्न 15 :- औपचारिक संगठन की कोई चार विशेषताओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए?
- प्रश्न 16 :- एक साफ्टवेयर कम्पनी सचिन लि० के कर्मचारियों ने अपने मनोरंजन के लिए ड्रामेटिक ग्रुप बनाया। इस प्रकार स्थापित संगठन का नाम बताइए और इसकी तीन विशेषताओं का वर्णन कीजिए?
- प्रश्न 17 :- 'औपचारिक' तथा 'अनौपचारिक' संगठन में कोई चार अंतर बताइए?
- प्रश्न 18 :- एक प्रबन्धक का विचार है कि वह काम की क्वालिटी के लिए उत्तरदायी नहीं है जिसे उसने अपने अधीनस्थ को सौंप दिया था। क्या आप इस विचार से सहमत हैं? उचित तर्क देकर अपने उत्तर को स्पष्ट करें?
- प्रश्न 19 :- प्रत्यायोजन वह माध्यम है जिसके द्वारा एक प्रबन्धक अपनी कार्यशक्ति बढ़ाता है। इस कथन को स्पष्ट कीजिए?

6 अंक वाले प्रश्न

- प्रश्न 20 :- प्रबन्ध के एक कार्य के रूप में संगठन का महत्व लिखिए?
- प्रश्न 21 :- 'औपचारिक संगठन, अनौपचारिक संगठन की अपेक्षा बेहतर माना जाता है? क्या आप इस कथन से सहमत हैं? कारण दीजिए।
- प्रश्न 22 :- एक संगठन के प्रभागीय ढांचे का क्या अर्थ है? इसके किन्हीं दो लाभों तथा किन्हीं दो सीमाओं की व्याख्या कीजिए?
- प्रश्न 23 :- विकेन्द्रीयकरण एक ऐच्छिक नीति है। एक संगठन विकेन्द्रीयकरण होना क्यों पसन्द करता है? व्याख्या कीजिए।
- प्रश्न 24 :- अधिकार अंतरण का अर्थ एवं प्रक्रिया का वर्णन कीजिए?

अध्याय 6

‘नियुक्तिकरण’

नियुक्तिकरण का अर्थ है - लोगों को काम पर लगाना। यह मानव संसाधनों के नियोजन से प्रारम्भ होता है तथा भर्ती, प्रशिक्षण, विकास, पदोन्नति तथा कार्यदल के निष्पादन मूल्यांकन को शामिल करता है।

नियुक्तिकरण की आवश्यकता तथा महत्व :-

- (1) **योग्य कर्मचारी प्राप्त करना :-** यह विभिन्न पदों के लिए योग्य कर्मचारियों को खोजने में सहायता करता है।
- (2) **बेहतर निष्पादन :-** सही व्यक्ति को सही स्थान पर रखकर यह बेहतर निष्पादन को निश्चित करता है।
- (3) **निरन्तर विकास :-** उचित नियुक्तिकरण उपक्रम के निरन्तर विकास को सुनिश्चित करता है।
- (4) **मानव संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग :-** यह आवश्यकता से अधिक कर्मचारियों को रखने से बचाता है। उच्च श्रम लागत को रोकने में सहायक है।
- (5) **कर्मचारियों का मनोबल बढ़ाता है :-** यह कर्मचारियों के कार्य सन्तोष में सुधार करता है।

मानव संसाधन प्रबन्ध :-

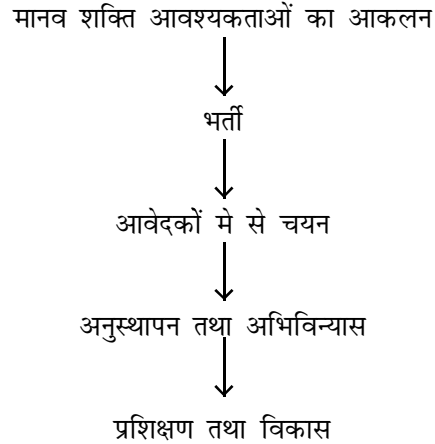
कुशल मानवीय संसाधन उपलब्ध कराने का काम मानव संसाधन प्रबन्ध का है। इस काम को करने के लिए बड़ी संस्थाओं में मानव संसाधन विभाग स्थापित किया जाता है। यह विभाग मानव संसाधन प्रबन्धक की देखरेख में काम करता है।

परिभाषा :- मानव संसाधन प्रबन्ध में मानव संसाधनों की भर्ती, चयन, विकास, उपयोग, क्षतिपूर्ति और अभिप्रेरण को सम्मिलित किया जाता है।

नियुक्तिकरण मानव संसाधन प्रबन्ध के एक भाग के रूप में :-

मानव संसाधन प्रबन्ध का क्षेत्र नियुक्तिकरण की अपेक्षा विस्तृत है। इसके अन्तर्गत नियुक्तिकरण, अभिलेख रखना, कर्मचारी नीतियां तैयार करना, कर्मचारी अनुसंधान करना, विशेषज्ञ सेवाएं प्रदान करना आदि को सम्मिलित किया जाता है।

नियुक्तिकरण प्रक्रिया के चरण :-



नियुक्तिकरण के विभिन्न पहलू :-

(क) भर्ती (ख) चयन (ग) प्रशिक्षण (भर्ती + चयन + प्रशिक्षण = नियुक्तिकरण)

भर्ती :- भर्ती सम्भावित कर्मचारियों को ढूँढने तथा संगठन में काम करने के लिए आवेदन करने के लिए प्रोत्साहित करने की प्रक्रिया है।

भर्ती के स्रोत :-

(क) आन्तरिक स्रोत (ख) बाह्य स्रोत

भर्ती के आन्तरिक स्रोत :- आन्तरिक स्रोत से तात्पर्य संगठन के भीतर प्रार्थियों को आमंत्रित करना है।

इस के दो महत्वपूर्ण स्रोत हैं :-

(1) स्थानांतरण :- इसमें कर्मचारी को एक जगह से दूसरी जगह भेज देना शामिल है जैसे एक विभाग से दूसरे विभाग में या एक पारी से दूसरी पारी में भेजना।

(2) पदोन्नति :- इसमें कर्मचारियों को निम्न पद से उच्च पदों पर भेज देना शामिल है। जिसमें कर्मचारियों की जिम्मेदारी, सुविधा तथा भुगतान बढ़ जाते हैं।

(3) अस्थायी अलगाव (ले-आफ) :- अस्थायी रूप से अलग किये गये कर्मचारियों को वापिस काम पर बुलाने को अस्थायी अलगाव (ले-आफ) कहा जाता है।

आन्तरिक स्रोतों के लाभ :-

(1) कर्मचारी अपने कार्य निष्पादन के सुधार के लिए प्रेरित होते हैं।

(2) आन्तरिक भर्ती चयन प्रक्रिया को सरल कर देती है।

(3) कर्मचारियों के प्रशिक्षण एवं विकास पर समय बर्बाद नहीं होता।

(4) आन्तरिक भर्ती के स्रोत सस्ते हैं।

आन्तरिक स्रोतों की सीमाएं :-

- (1) नयी प्रतिभाओं के संस्था में प्रवेश के अवसर कम होते हैं।
- (2) कर्मचारी अकर्मण्य हो जाते हैं।
- (3) कर्मचारियों के मध्य प्रतियोगिता में बाधा पड़ती है।
- (4) कर्मचारियों का लगातार स्थानांतरण संगठन की उत्पादकता को घटा सकता है।

भर्ती के बाह्य स्रोत :-

- (1) प्रत्यक्ष भर्ती :- उपक्रम के सूचना पट्ट पर एक सूचना लगाई जाती है जिसमें रिक्त स्थानों का विवरण होता है।
- (2) प्रतीक्षा सूची :- अनेक बड़े व्यापारिक उपक्रम अपने कार्यालय में प्रतीक्षा सूची रखते हैं आवश्यकता होने पर उन्हें बुलाया जा सकता है।
- (3) विज्ञापन :- समाचार पत्र या पत्रिकाओं में रिक्त स्थानों के विज्ञापन द्वारा भर्ती की जा सकती है।
- (4) रोजगार कार्यालय :- नौकरी तलाशने वाले इन कार्यालयों में अपना नाम दर्ज कराते हैं। इनके माध्यम से भर्ती की जा सकती है।
- (5) महाविद्यालय से भर्ती या ठेकेदारों के माध्यम से भी भर्ती की जा सकती है।

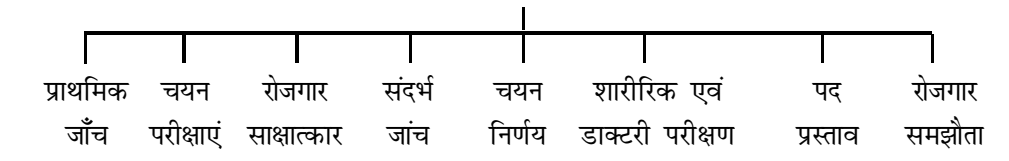
भर्ती के बाह्य स्रोतों के लाभ :-

- (1) योग्य कर्मचारी :- भर्ती के बाह्य स्रोत के प्रयोग से प्रबन्ध योग्य एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों को संस्था के रिक्त पदों के लिए आवेदन का अवसर देती है।
- (2) विस्तृत विकल्प :- प्रबन्धकों के पास विस्तृत विकल्प उपलब्ध होते हैं।
- (3) नयी प्रतिभाएं :- नये विचारों का उपक्रम में समावेश होता है।
- (4) प्रतियोगिता की भावना :- कर्मचारियों में प्रतियोगिता की भावना का विकास होता है।

बाह्य स्रोत की कमियाँ/सीमाएँ :-

- (1) वर्तमान कर्मचारियों में असन्तोष की भावना :- संस्था में काम करने वाले कर्मचारियों में असन्तोष फैलता है क्योंकि वे महसूस करते हैं कि उनकी पदोन्नति के मौके घट गए हैं।
 - (2) महंगी प्रक्रिया :- विज्ञापन आदि पर लागत अधिक आती है।
 - (3) लम्बी प्रक्रिया :- भर्ती प्रक्रिया में ज्यादा समय लगता है।
- (ख) चयन :- चयन एक प्रक्रिया है जो संगठन के भीतर व बाहर से वर्तमान स्थिति एवं भविष्य की स्थिति के लिए उपयुक्त अभ्यर्थियों को चुनती है।

चयन प्रक्रिया के चरण



(ग) प्रशिक्षण :- प्रशिक्षण किसी विशिष्ट कार्य को कुशलतापूर्वक करने के लिए कर्मचारियों की जानकारी एवं तकनीकी कौशल बढ़ाने की गतिविधि है।

प्रशिक्षण से संगठन को लाभ :-

- (1) प्रशिक्षण कर्मचारियों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता को बढ़ाता है।
- (2) प्रशिक्षण कर्मचारियों के मनोबल को बढ़ाता है।
- (3) कर्मचारियों को नई तकनीक का ज्ञान प्राप्त होता है।
- (4) मशीनों का कुशलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है।

प्रशिक्षण से कर्मचारियों को लाभ :-

- (1) प्रशिक्षण के द्वारा कर्मचारियों में कौशल एवं ज्ञान की वृद्धि होती है।
- (2) कर्मचारी को अधिक कमाने में सहायता होती है।
- (3) कर्मचारी दुर्घटनाओं से बचाव कर सकते हैं।
- (4) प्रशिक्षण कर्मचारियों के सन्तोष तथा मनोबल को बढ़ाता है।

प्रशिक्षण की विधियाँ :-

(क) आन दा जॉब विधियाँ :- यह उस जगह लागू होती है जब कर्मचारी वास्तव में काम कर रहे होते हैं - इसका अर्थ है जब करें तब सीखें। मुख्य विधियाँ निम्न हैं।

(1) प्रशिक्षणार्थी कार्यक्रम :- इस कार्यक्रम में अनुभवी कर्मचारी को प्रशिक्षक नियुक्त किया जाता है जो मजदूर को सारी कुशलताएं सिखाता है।

(2) शिक्षण या कोचिंग :- इस पद्धति में उच्च अधिकारी अनुशिक्षण की भांति प्रशिक्षणार्थी को निर्देश देते हैं।

(3) कार्यबदली :- इस प्रकार के प्रशिक्षण में कर्मचारी को एक विभाग को दूसरे विभाग या एक कार्य से दूसरे कार्य में स्थानान्तरण किया जाता है।

(ख) ऑफ दा जॉब विधियाँ :- इस पद्धति में कर्मचारी को प्रशिक्षण कार्यस्थल से दूर दिया जाता है इसका अर्थ है काम करने से पहले सीखें। मुख्यविधियाँ निम्न हैं :-

(1) कक्षा कक्ष व्याख्यान :- व्याख्यानों के द्वारा कर्मचारियों को सूचनाएं प्रदान की जाती हैं। इसमें दृश्य श्रव्य सामग्री का भी प्रयोग किया जाता है।

(2) चलचित्र :- ये सूचनाएं प्रदान करती हैं।

(3) समस्या अध्ययन :- प्रशिक्षार्थी केस का अध्ययन कर कारणों का पता लगता है एवं उन्हें दूर करता है।

(4) प्रकोष्ठ प्रशिक्षण :- इसमें संयंत्र का एक मॉडल बनाया जाता है उस पर कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया जाता है।

(5) कम्प्यूटर प्रतिमान :- कम्प्यूटर प्रोग्राम द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है।

एक अंक वाले प्रश्न :-

- (1) नियुक्तिकरण का अर्थ समझाइए।
- (2) अनुस्थापन का अर्थ बताइए।

- (3) चयन को नकारात्मक प्रक्रिया क्यों कहा जाता है।
- (4) कार्यबदली प्रशिक्षण का एक लाभ बताइयें?
- (5) प्रारम्भिक जांच का एक उद्देश्य बताइये?
- (6) साक्षात्कार क्या है?
- (7) कार्य पर प्रशिक्षण से आप क्या समझते हैं?
- (8) भर्ती से क्या अभिप्राय है?
- (9) अस्थायी अलगाव (ले-आफ) का अर्थ बताइये।
- (10) नियुक्तिकरण प्रक्रिया के अन्तिम चरण का नाम बताइये?
- (11) चयन प्रक्रिया के प्रथम चरण का नाम बताइये?

3/4 अंक वाले प्रश्न :-

- (12) रोजगार परीक्षाओं के किन्ही तीन प्रकारों का वर्णन कीजिए?
- (13) चयन और प्रशिक्षण शब्द की व्याख्या कीजिए?
- (14) भर्ती के बाह्य स्रोतों की तुलना में आन्तरिक स्रोत किस प्रकार बेहतर होते हैं। अपने उत्तर के समर्थन में कारण बताइये।
- (15) प्रशिक्षण एवं विकास में अन्तर बताइयें?

5/6 अंक वाले प्रश्न :-

- (16) प्रबन्ध के कार्य के रूप में नियुक्तिकरण के महत्व की व्याख्या कीजिए?
- (17) नियुक्तिकरण प्रक्रिया में शामिल चरणों का संक्षेप में वर्णन कीजिए?
- (18) प्रशिक्षण का क्या अर्थ है इसके मुख्य उद्देश्य कौन कौन से हैं?
- (19) भर्ती के बाह्य स्रोत के रूप में लाभ व हानियों का वर्णन कीजिए?
- (20) “जहाँ भर्ती की प्रक्रिया खत्म होती है वहाँ चुनाव की प्रक्रिया शुरू होती है।” इस कथन के प्रकाश में भर्ती और चुनाव के बीच अन्तर बताइयें।
- (21) चयन प्रक्रिया के चरणों की व्याख्या कीजिए?
- (22) प्रशिक्षण की ऑफ द जॉब विधियों का वर्णन कीजिए?
- (23) भर्ती के आन्तरिक स्रोतों के लाभ व हानियों का वर्णन कीजिए?
- (24) एक नये नियुक्त प्रबन्ध कर्मचारी का विचार है कि श्रमिकों के प्रशिक्षण की कोई आवश्यकता नहीं है। क्या आप उसके विचार से सहमत हैं। अपने उत्तर के पक्ष में कारण दीजिए?
- (25) नियुक्तिकरण की मानव संसाधन प्रबन्ध के एक भाग के रूप में व्याख्या कीजिए?

अध्याय 7

‘निर्देशन’

निर्देशन का अर्थ :- निर्देशन का अभिप्राय संगठन में मानव संसाधन को निर्देश देना, उसका मार्गदर्शन करना संदेशवाहन करना व उसे अभिप्रेरित करना है ताकि उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। निर्देशन का अर्थ केवल निर्देशों से नहीं होता बल्कि इसमें कर्मचारियों को उस समय देखा जाना भी सम्मिलित होता है जब वे कार्य कर रहे होते हैं। इसमें संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रेरणा देना एवं नेतृत्व करना भी शामिल होता है।

विशेषताएं :- (1) निर्देशन गतिविधि को प्रारम्भ करता है - प्रबन्ध के अन्य कार्य गतिविधि हेतु आधार तैयार करते हैं परन्तु निर्देशन संगठन के भीतर कार्य को प्रारम्भ करता है।

(2) निर्देशन प्रबन्ध के प्रत्येक स्तर पर होता है - उच्चस्तरीय प्रबन्धक से लेकर निम्नस्तरीय प्रबन्धक तक सभी निर्देशन का कार्य करते हैं।

(3) निर्देशन एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है - निर्देशन पर्यवेक्षण, संदेशवाहन, नेतृत्व एवं अभिप्रेरणा की निरंतर रूप से चलने वाली प्रक्रिया होती है। यह संगठन में जीवनभर चलती रहती है।

(4) निर्देशन का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर होता है। यह उच्च स्तरीय प्रबन्ध से शुरू होकर निम्नस्तरीय प्रबन्ध पर समाप्त होता है।

निर्देशन का महत्व :- निर्देशन का महत्व निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट होता है :-

(1) यह गतिशीलता प्रदान करता है - संगठन में व्यक्ति केवल तब कार्य शुरू करते हैं जब वे अपने वरिष्ठ अधिकारियों से निर्देश प्राप्त करते हैं। यह निर्देशन कार्य ही है जो योजनाओं को परिणामों में बदलने हेतु वास्तविक कार्य का प्रारम्भ करता है।

(2) कर्मचारियों के प्रयासों को एकीकरण करना :- संगठन में सभी क्रियाएं एक दूसरे से जुड़ी रहती हैं अतः सभी क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक है। निर्देशन पर्यवेक्षण, दिशा निर्देशन व सलाह के द्वारा अधीनस्थों की गतिविधियों को समन्वित करता है।

(3) यह अभिप्रेरण का माध्यम है :- संस्था के उद्देश्यों को अभिप्रेरित कर्मचारी ही पूरा कर सकते हैं। अभिप्रेरण का काम प्रबन्ध के निर्देशन कार्य द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

(4) यह परिवर्तनों को लागू करना संभव बनाता है - प्रायः कर्मचारी जिस तरह के ढाँचे में काम कर रहे होते हैं वे उसमें कोई परिवर्तन स्वीकार नहीं करते। प्रबन्धक निर्देशन के माध्यम से कर्मचारियों को इस प्रकार तैयार करते हैं कि वे परिवर्तनों को स्वीकार करने लगते हैं।

(5) यह संगठन में संतुलन स्थापित करता है - कभी-कभी व्यक्तिगत व संस्थागत उद्देश्यों में संघर्ष पैदा हो जाता है। निर्देशन इन संघर्षों को दूर करता है और संगठन में संतुलित स्थिति स्थापित करने में सहायता करता है।

निर्देशन के सिद्धान्त :- निर्देशन के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं।

(1) **अधिकतम व्यक्तिगत योगदान सिद्धान्त :-** इसके अनुसार ऐसी निर्देशन पद्धति अपनानी चाहिए जिससे कर्मचारी अभिप्रेरित हो और संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति में अधिकतम योगदान दें।

(2) **उद्देश्यों के सामजस्य का सिद्धान्त :-** इसके अनुसार संगठनात्मक उद्देश्यों और व्यक्तिगत उद्देश्यों में पूर्ण सामजस्य होना चाहिए। प्रबन्धक को चाहिए कि उपयुक्त निर्देशन विधि द्वारा दोनों पक्षों के उद्देश्यों में सामजस्य स्थापित करे।

(3) **आदेश की एकता का सिद्धान्त :-** इसके अनुसार एक अधीनस्थ को एक समय पर एक ही अधिकारी से आदेश प्राप्त होने चाहिए। अन्यथा संगठन में भ्रम, झगड़े व अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न होगी।

(4) **निर्देशन पद्धति की उपयुक्तता का सिद्धान्त :-** इसके अनुसार उपयुक्त निर्देशन विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए जैसे - प्रभावी ढंग से पर्यवेक्षण करना, कुशल नेतृत्व प्रदान करना, खुला संदेशवाहन अपनाना तथा अभिप्रेरण के उपयुक्त माध्यम को लागू करना।

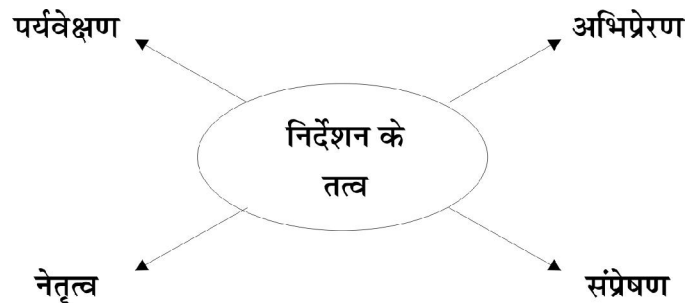
(5) **प्रबन्धकीय संदेशवाहन का सिद्धान्त :-** इसके अनुसार प्रबन्धक द्वारा यह देखा जाना चाहिए कि जो कुछ कहा गया है क्या अधीनस्थों द्वारा उसे उन्हीं अर्थों में समझ लिया गया है। इसमें अधीनस्थों का काम सरल हो जाता है।

(6) **अनौपचारिक संगठन का प्रयोग :-** प्रबन्धक को प्रभावशाली निर्देशन के लिए अनौपचारिक संगठन को स्वीकार करना चाहिए तथा उसका उपयोग करना चाहिए।

(7) **नेतृत्व का सिद्धान्त :-** इसके अनुसार अधीनस्थों का निर्देशन करते समय प्रबन्धकों को अच्छा नेतृत्व प्रदान करना चाहिए।

(8) **अनुगमन :-** केवल आदेशों एवं निर्देशों का जारी किया जाना ही पर्याप्त नहीं होता। प्रबन्धकों को सतत् रूप से निगरानी करते हुए इनका अनुमान करना चाहिए कि क्या आदेशों का ठीक से पालन हो रहा है या नहीं

निर्देशन के तत्व



पर्यवेक्षण :- इसका अभिप्राय अपने अधीनस्थों के दिन-प्रतिदिन के काम की प्रगति की देखभाल करने एवं उनका मार्गदर्शन करने से है। पर्यवेक्षण में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि यह अधिकारी एवं अधीनस्थ में आमने-सामने होता है।

पर्यवेक्षण का महत्व/पर्यवेक्षक की भूमिका

1. **कर्मचारियों तथा प्रबंध के मध्य कड़ी :-** पर्यवेक्षक प्रबन्धकों एवं श्रमिकों के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करता है वह श्रमिकों को प्रबन्ध की नीतियाँ बताता है तथा कर्मचारियों की समस्याओं पर प्रबंध का ध्यान आकर्षित करता है।
2. **निर्देशों का जारी किया जाना :-** पर्यवेक्षक कार्यों को करवाने के लिए आदेश और निर्देश जारी करता है तथा यह तय करता है कि निर्देश सभी कर्मचारियों तक पहुँच गये हैं।
3. **नियंत्रण सुगम बनता है :-** नियंत्रण का आशय वास्तविक एवं नियोजित उत्पाद में तालमेल बैठाना/बिठाना होता है। पर्यवेक्षण कार्य के निष्पादन को लक्ष्य के अनुसार किया जाना तय करता है।
4. **अनुशासन बनाए रखना :-** पर्यवेक्षक का कठोर पर्यवेक्षण एवं मार्गदर्शन कर्मचारियों को अधिक अनुशासित रहकर कार्य करने की प्रेरणा देता है।
5. **प्रतिपुष्टि :-** पर्यवेक्षण कर्मचारियों के साथ सम्पर्क करके उनकी सहायता करता है। सीधा सम्पर्क होने के कारण वे उनसे प्राप्त सुझावों व शिकायतों की जानकारी प्रबन्ध को देते हैं।
6. **अभिप्रेरणा में वृद्धि :-** अच्छी नेतृत्व क्षमता रखने वाला पर्यवेक्षक श्रमिकों के मनोबल को बढ़ा सकता है। पर्यवेक्षक अपनी सर्वोत्तम क्षमता से कर्मचारियों को कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं।
7. **संसाधनों का कुशलतम उपयोग :-** पर्यवेक्षण के अन्तर्गत विभिन्न क्रियाओं पर निगरानी रखी जाती है। ऐसी स्थिति में संसाधनों का बेहतर उपयोग संभव होता है।

अभिप्रेरणा का अर्थ

अभिप्रेरणा का अर्थ उस प्रक्रिया से है जो इच्छित उद्देश्यों को पूरा करने हेतु लोगों को कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करती है। अभिप्रेरणा लोगों की संतुष्टि की आवश्यकता पर निर्भर करती है।

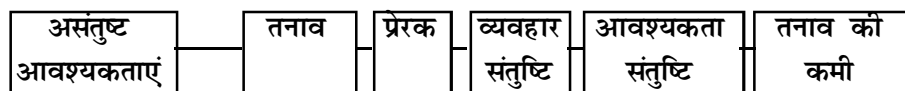
विशेषताएं :- 1. अभिप्रेरणा एक आंतरिक अनुभव है। सर्वप्रथम व्यक्ति के मस्तिष्क में कुछ आवश्यकताएँ जन्म लेती हैं जिन का प्रभाव उसके व्यवहार पर पड़ता है और उनको पूरा करने के लिए व्यक्ति कुछ कार्य करने की सोचता है।

2. लक्ष्य निर्देशित व्यवहार :- यह व्यक्तियों को इस तरह से व्यवहार करने की प्रेरणा देता है। ताकि वे अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सकें।

3. सकारात्मक अथवा नकारात्मक :- सकारात्मक अभिप्रेरणा का आशय व्यक्तियों को बेहतर कार्य करने तथा कार्य को सराहने के लिए प्रोत्साहन देना होता है। नकारात्मक अभिप्रेरणा से व्यक्तियों को धमकी या दण्ड द्वारा कार्य करने पर बल दिया जाता है।

4. जटिल प्रक्रिया :- यह एक कठिन प्रक्रिया है क्योंकि व्यक्तियों की आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं तथा ये घटती-बढ़ती रहती हैं।

अभिप्रेरणा प्रक्रिया :- अभिप्रेरणा की प्रक्रिया मनुष्य की आवश्यकताओं पर निर्भर करती है।



एक असंतुष्ट आवश्यकता व्यक्ति में परेशानी पैदा करती है जो इच्छा को उत्पन्न करती है। ये इच्छाएं आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए खोजी व्यवहार को उत्पन्न करती है। यदि यह आवश्यकता संतुष्ट हो जाती है तो व्यक्ति को परेशानी से छुटकारा मिल जाता है।

महत्व :- 1. संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति :- संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अभिप्रेरणा के द्वारा कार्यरत व्यक्तियों को मेहनत करने तथा सर्वोत्तम तरीके से योगदान करने के लिए अभिप्रेरित किया जाता है।

2. कर्मचारियों की उच्चतर कार्यक्षमता :- अभिप्रेरणा कार्य करने की सक्षमता एवं कार्य करने की इच्छा के बीच अन्तर को भरने में एक पुल का कार्य करती है तथा इच्छा से कार्यक्षमता में सुधार आता है।

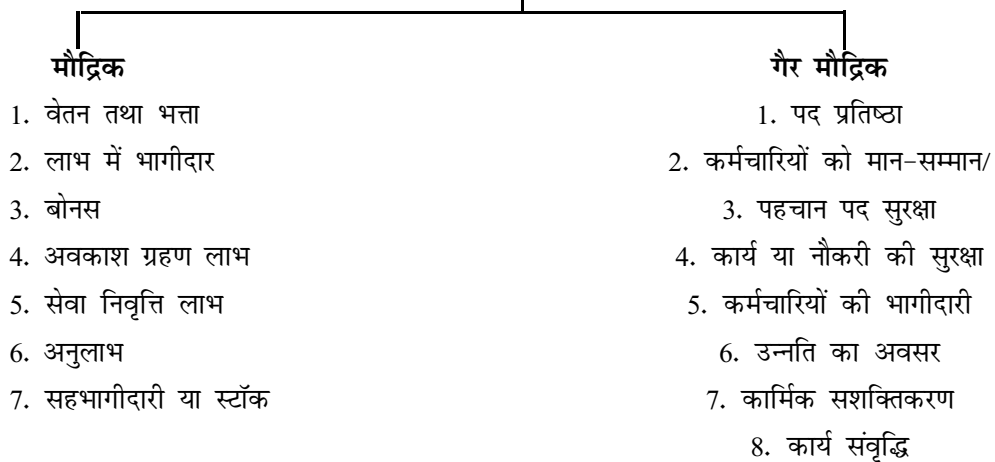
3. परिवर्तन की सुविधा :- प्रभावशाली अभिप्रेरणा परिवर्तन का विरोध समाप्त करने में सहायता करती है। अभिप्रेरित व्यक्ति संगठन के हित में होने वाले प्रत्येक बदलाव का साथ देते हैं।

4. कार्यबल में स्थायित्व :- अभिप्रेरणा कर्मचारियों में विश्वास लाती है। अभिप्रेरित कर्मचारी काम से अनुपस्थित नहीं रहते क्योंकि काम का स्थान उनके लिए खुशी का स्रोत बन जाता है।

5. संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग :- अभिप्रेरित कर्मचारी मशीनों व सामग्री को अच्छी प्रकार से संभाल पाते हैं। इससे संसाधनों का बेहतर उपयोग होता है तथा बर्बादी में कमी आती है।

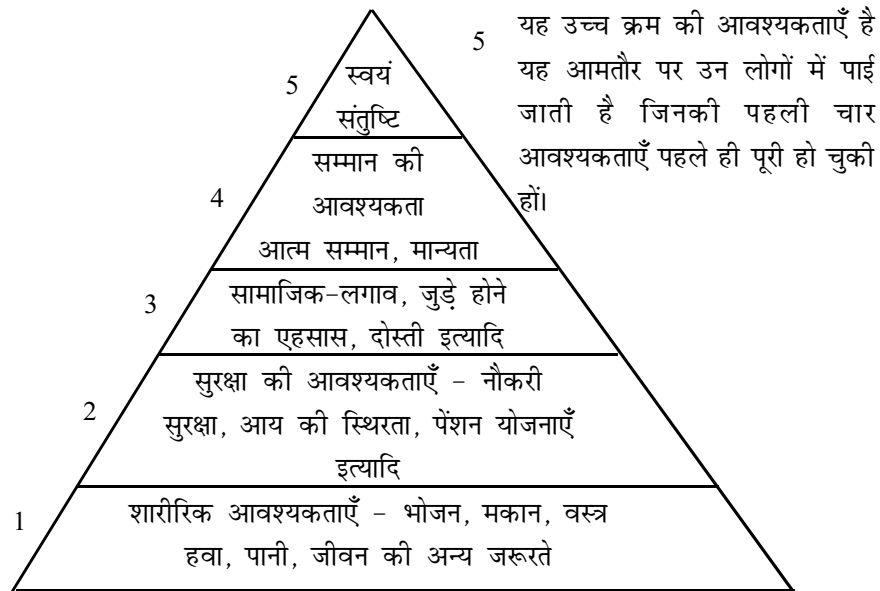
मौद्रिक तथा गैर-मौद्रिक प्रोत्साहन :- प्रोत्साहन का अर्थ है वे सभी माप जो व्यक्तियों को अभिप्रेरित कर निष्पादन सुधारने में प्रयोग किए जाते हैं।

प्रोत्साहन के प्रकार



मासलो की आवश्यकता - क्रम अभिप्रेरणा का सिद्धान्त

मासलो ने मनुष्य की विभिन्न आवश्यकताओं को प्राथमिकता के आधार पर पांच भागों में बांटा है -



नेतृत्व :- नेतृत्व काम पर लोगों के व्यवहार को, संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रभावित करने की प्रक्रिया है। सभी स्तरों पर प्रबंधक अपने अधीनस्थों का नेतृत्व करते हैं।

विशेषताएं :-

1. **व्यवहार को प्रभावित करना :-** नेतृत्व दूसरों को प्रभावित करने की व्यक्तिगत योग्यता की ओर संकेत करता है।
2. **अन्तर्व्यक्ति संबंध :-** दूसरों के व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है।
3. **सामान्य लक्ष्य :-** संगठन के सामान्य उद्देश्यों को प्राप्त करने की क्रिया है।
4. **सतत् प्रक्रिया :-** लगातार चलने वाली प्रक्रिया है।

नेतृत्व का महत्व :-

1. कर्मचारियों का मार्गदर्शन करने तथा प्रेरणा देने में सहायता करता है।
2. विश्वास उत्पन्न करता है - नेता कर्मचारियों की छिपी प्रतिभा एवं गुणों को मान्यता देकर उनके विश्वास को बढ़ाता है।
3. विवादों को प्रभावशाली रूप से हल करता है तथा विवादों के प्रतिकूल प्रभाव नहीं होने देता।
4. वांछित परिवर्तनों को लागू करने में सहायक होता है। अधीनस्थों के प्रशिक्षण एवं विकास में सहायक होता है।
5. संगठन में सदस्यों का सहयोग सुनिश्चित करता है।
6. उत्पादकता बढ़ाता है।
7. कार्य सन्तुष्टि बढ़ाता है।
8. संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करता है।

अच्छे नेता की विशेषताएं/गुण :-

शारीरिक विशेषताएँ :- नेता का शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ होना चाहिए ताकि लोग प्रभावित होकर उत्साह से कार्य करें।

2. ज्ञान : नेता सही तरह से प्रत्येक समस्या को जाँचने में सक्षम होना चाहिए।

3. सत्यनिष्ठा :- नेता स्वामी व कर्मचारियों के मध्य की कड़ी है अतः उसे दोनों के प्रति पूरी निष्ठा के साथ कार्य करना चाहिए।

4. पहल क्षमता :- एक नेता जिसमें यह गुण होता है वह अवसरों की इंतजार नहीं करता बल्कि उन्हें पैदा करता है।

5. अभिप्रेरण कौशल :- नेता को अभिप्रेरण की विभिन्न विधियों की जानकारी होनी चाहिए ताकि कर्मचारियों को उनके स्वभाव के अनुसार प्रेरित किया जा सके।

6. संदेशवाहक कौशल :- नेता को एक अच्छा संदेशवाहक होना चाहिए।

संप्रेषण :- संप्रेषण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत संदेश को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुंचाया जाता है ताकि वे पारस्परिक समझ बना सकें।

संप्रेषण प्रक्रिया के तत्व

(1) **प्रेषक** - जो अपने विचारों को प्राप्तकर्ता के पास भेजता है।

(2) **संदेश** - विचार, सुझाव, सूचना आदि।

(3) **एन्कोडिंग** - यह सूचना को विचार चिन्हों जैसे शब्दों, चित्रों आदि में बदलने की प्रक्रिया है।

(4) **माध्यम** - कूटबद्ध संदेश को प्राप्तकर्ता के पास भेजा जाता है।

(5) **डिकोडिंग** - संदेश प्राप्त करने के बाद प्राप्तकर्ता उसी तरह से जिस तरह प्रेषक आशा करता है, संदेश को समझने का प्रयास करता है। एन्कोडिंग चिन्हों को प्रेषकों को भेजने की प्रक्रिया है।

(6) **प्राप्तकर्ता** - वह व्यक्ति जो प्रेषक के संप्रेषण को प्राप्त करता है।

(7) **प्रतिपुष्टि** - प्राप्तकर्ता की सभी गतिविधियां सम्मिलित हैं जो यह संकेत करती है कि उसने प्रेषक द्वारा भेजा गया संदेश प्राप्त कर लिया है।

(8) **शोरगुल/ध्वनि** - शोरगुल एक ऐसा तत्व है जो सूचना में बाधा डालता है।

संप्रेषण का महत्व - 1. समन्वय के आधार के रूप में काम करना : सफलता प्राप्ति के लिए विभिन्न क्रियाओं में समन्वय आवश्यक है। इसके लिए सभी व्यक्तियों को इस बात की पूरी जानकारी होनी चाहिए कि उनकी क्रियाओं में क्या सम्बन्ध है। ऐसा केवल प्रभावपूर्ण संदेशवाहन द्वारा ही संभव है।

2. निर्णय लेने के आधार के रूप में काम करना :- निर्णय से संबंधित सूचनाओं को संदेशवाहन द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

3. प्रबंधकीय कुशलता को बढ़ाती है - संदेशवाहन के माध्यम से ही प्रबंधक निर्धारित किये गये उद्देश्यों की जानकारी अन्य व्यक्तियों को देते हैं तथा अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्य पर नियन्त्रण रखते हैं।

4. सहयोग तथा औद्योगिक शान्ति को बढ़ावा - संदेशवाहन के माध्यम से श्रमिक एवं प्रबंधक दोनों को अपनी-अपनी बात कहने का अवसर मिलता है जिससे औद्योगिक शान्ति एवं सहयोग को बढ़ावा मिलता है।

5. प्रभावशाली नेतृत्व की स्थापना - प्रबंधक अपनी संदेशवाहन कला में सुधार करके एक कुशल नेता बन सकता है।

6. मनोबल वृद्धि तथा अभिप्रेरणा प्रदान करना - प्रभावी संदेशवाहन कर्मचारियों में अभिप्रेरणा एवं मनोबल वृद्धि का काम करता है।

औपचारिक संप्रेषण :- जब कार्यालय से सम्बन्धित विचारों या संदेश या सूचना का आदान प्रदान होता है तो इसे औपचारिक संप्रेषण कहते हैं।

औपचारिक संप्रेषण का वर्गीकरण

1. लम्बवत् संदेशवाहन :- औपचारिक श्रंखला के माध्यम से लम्बवत् रूप में ऊपर की ओर व नीचे

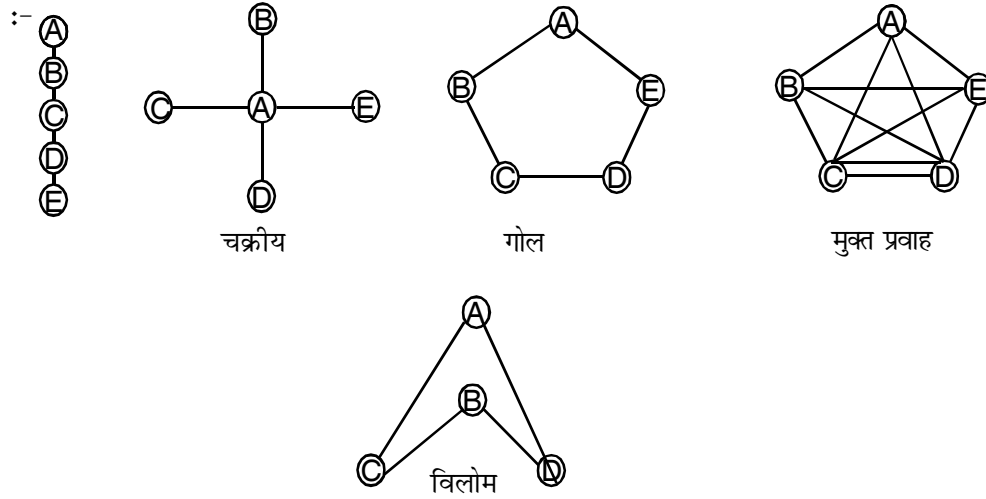
की ओर चलता है।

(1) नीचे की ओर अथवा अधोमुखी संदेशवाहन - योजना, नीति, नियम

(2) ऊपर की ओर अथवा ऊर्ध्वमुखी संदेशवाहन - सुझाव, शिकायत

2. समतल संदेशवाहन - औपचारिक श्रृंखला के माध्यम से समतल रूप में एक ही स्तर के दो व्यक्तियों के मध्य चलता है।

औपचारिक संप्रेषण का जालतंत्र संप्रेषण :- जालतंत्र संप्रेषण से तात्पर्य है वह माध्यम जिसके द्वारा संप्रेषण संपूर्ण संगठन में प्रवाहित होता है। औपचारिक संप्रेषण जाल के विभिन्न प्रकार इस प्रकार है :-



अनौपचारिक संप्रेषण :- संचार की औपचारिक रेखाओं को अपनाएं बिना किया जाने वाला संप्रेषण अनौपचारिक संप्रेषण होता है।

अनौपचारिक संप्रेषण के अधीन सूचनाओं के प्रवाह की कोई निश्चित दिशा या मार्ग नहीं होता।

1. अंगूरीलता अथवा अनौपचारिक संप्रेषण के जाल इकहरी श्रृंखला - जालतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से श्रृंखला में संचार करता है।

2. गपशप/अफवाहें :- जालतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति दूसरों से बिना किसी चुनाव के आधार पर बात करता है।

3. संभाव्यता - एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति से निरूद्देश्य बातचीत करता है।

4. समूह/भीड़-भाड़ - व्यक्ति केवल उन लोगों से संचार करता है जिन पर वह विश्वास करता है।

औपचारिक तथा अनौपचारिक संप्रेषण में अंतर

| आधार | औपचारिक | अनौपचारिक |
|-----------|---|--|
| 1. आशय | यह अधिकार-दायित्व संबंध पर आधारित है। | यह व्यक्तियों के आपसी संबंध/पारस्परिक संबंधों पर आधारित है। |
| 2. वाहिका | इसमें संप्रेषण मार्ग पूर्वनिर्धारित होते हैं। | इसमें संप्रेषण के मार्ग निर्धारित नहीं होते, ये मानव संबंधों व भावनाओं से पनपते हैं। |

| | | |
|---------------|---|--|
| 3. गति | इसमें निर्णय देरी से लिये जाते हैं। | इसमें तुरन्त व शीघ्र निर्णय होते हैं। |
| 4. प्रकृति | इसकी प्रकृति कठोर होती है तथा इसमें सुधार नहीं किया जा सकता है। | यह लोचदार होता है तथा एक व्यक्ति से अन्य व्यक्ति तक बदल जाता है। |
| 5. अभिव्यक्ति | इसे बहुधा लिखित रूप में व्यक्त किया जाता है। | इसमें बहुधा मौखिक रूप में व्यक्त किया जाता है। |

प्रभावशाली संप्रेषण में बाधाएँ :-

1. भाषा संबंधी बाधाएँ :- शब्दों व भावों में संदेश कूट लेखन व कूटवाचन समस्याओं तथा कठिनाइयों से जुड़ा है।

भाषा संबंधी मुख्य बाधाएँ निम्नलिखित हैं :-

1. संदेशों की गलत व्याख्या
2. भिन्न अर्थों वाले चिन्ह अथवा शब्दों का प्रयोग।
3. त्रुटिपूर्ण अनुवाद अथवा रूपांतर
4. अर्थहीन तकनीकी भाषा का प्रयोग।
5. अस्पष्ट मान्यताएँ

मानवैज्ञानिक बाधाएँ :- मानसिक रूप से अशांत कोई भी पक्ष संदेशवाहन को सार्थक बनाने में रूकावट बन सकता है। मानसिक बाधाएं इस प्रकार हैं :-

1. समय से पूर्व मूल्यांकन
2. ध्यान की कमी
3. प्रसारण द्वारा हानि तथा कमजोर ठहराव :- जब संदेश कई लोगों के मध्य से होकर पहुंचता है तो प्राप्तकर्ता तक पहुँचते-पहुँचते संदेश का स्वरूप बिगड़ जाता है।
4. अविश्वास

संगठनात्मक बाधाएँ :- संगठनात्मक ढांचा कर्मचारियों के संदेशवाहन करने की योग्यता पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। संगठनात्मक बाधाएं इस प्रकार हैं :-

- (1) संगठनात्मक नीतियां
- (2) नियम एवं अधिनियम
- (3) पदवी/पद
- (4) संगठनात्मक ढाँचे की जटिलता

व्यक्तिगत बाधाएँ :- अधिकारियों व अधीनस्थों के बीच की व्यक्तिगत बाधाएं इस प्रकार हैं :-

- (1) सत्ता के सामने चुनौती का भय
- (2) अधिकारियों का अधीनस्थों के प्रति विश्वास की कमी
- (3) संप्रेषण में अनिच्छा
- (4) उपयुक्त प्रोत्साहनों का अभाव

प्रभावी संप्रेषण के लिए सुधार

1. संदेशवाहन से पहले विचारों अथवा लक्ष्यों को स्पष्ट करना।
2. प्राप्तकर्ता की आवश्यकताओं के अनुसार संप्रेषण।
3. संप्रेषण से पहले दूसरों से सलाह लेना।
4. संदेश की भाषा, शब्द व विषय वस्तु के प्रति जागरूक रहना।
5. प्राप्तकर्ता के लिए सहायक एवं मूल्यवान संदेश प्रेषित करना।
6. उपयुक्त प्रतिपुष्टि सुनिश्चित करना।
7. संदेश की समानता।
8. एक अच्छा श्रोता बनना

1 अंक वाले प्रश्न

- प्रश्न 1 :- प्रबन्ध के किस कार्य को 'प्रबन्ध का क्रियाशील होना' कहा जाता है?
- प्रश्न 2 :- पर्यवेक्षण अनुशासन बनाए रखने में कैसे सहायक है?
- प्रश्न 3 :- आर्थिक सुरक्षा क्या है?
- प्रश्न 4 :- अमौद्रिक प्रेरणा के एक प्रकार के रूप में 'कार्य सम्पन्नता' का अर्थ बताइए?
- प्रश्न 5 :- 'नेतृत्व' का क्या अर्थ है?
- प्रश्न 6 :- 'सत्यनिष्ठा' का क्या अर्थ है?
- प्रश्न 7 :- 'एक नेता अवसरों की इंतजार नहीं करता बल्कि उन्हें पैदा करता है। यह कथन एक अच्छे नेता के किस गुण से संबंधित है?
- प्रश्न 8 :- संदेशवाहन प्रक्रिया में शोर का क्या अर्थ है?
- प्रश्न 9 :- संदेशवाहन प्रक्रिया में 'प्रतिपुष्टि' का क्या अर्थ है?
- प्रश्न 10 :- 'अपुष्ट समाचार' (ग्रेपवाइन) का क्या अर्थ है?

3 अंक वाले प्रश्न

- प्रश्न 11 :- निर्देशन प्रबन्ध का सबसे कम महत्वपूर्ण कार्य है। क्या आप इस कथन से सहमत हैं? अपने उत्तर के समर्थन में कोई दो कारण दीजिए।
- प्रश्न 12 :- "प्रबन्धकों की श्रृंखला में पर्यवेक्षक का पद समाप्त कर देना चाहिए।" क्या आप सहमत हैं? अपने उत्तर के समर्थन में कोई तीन कारण दीजिए?
- प्रश्न 13 :- वर्णन करें कि पर्यवेक्षण नियंत्रण में कैसे सहायक है?
- प्रश्न 14 :- अभिप्रेरणा सकारात्मक व नकारात्मक हो सकती है। कैसे?
- प्रश्न 15 :- अभिप्रेरणा संगठन में अनुपस्थिति दर घटाने में सहायक है। स्पष्ट कीजिए?

4 तथा 5 अंक वाले प्रश्न

- प्रश्न 16 :- निर्देशन के किन्हीं चार सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
- प्रश्न 17 :- अभिप्रेरणा की कोई चार विशेषताएं लिखिए।
- प्रश्न 18 :- गैर-मौद्रिक अभिप्रेरक के रूप में 'कार्य सम्पन्नता तथा सेवा सुरक्षा को समझाइए।
- प्रश्न 19 :- प्रबन्ध के निर्देशन कार्यों के रूप में नेतृत्व के महत्व का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 20 :- प्रभावपूर्ण संप्रेषण को बाधित करने वाले कोई चार संभावित तत्वों का वर्णन कीजिए।

6 अंक वाले प्रश्न

प्रश्न 21 :- 'पर्यवेक्षण निर्देशन कार्य का एक महत्वपूर्ण अंग है'। उपरोक्त कथन के समर्थन में किन्हीं चार कारणों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 22 :- कम्पनी के कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए प्रयोग में आने वाली विभिन्न वित्तीय तथा गैर-वित्तीय प्रोत्साहनों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 23 :- "नेतृत्व की प्रभावपूर्णता नेता के गुणों पर निर्भर करती है।" एक नेता के ऐसे किन्हीं चार गुणों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 24 :- एक संगठन में अनेक नेता हैं। लेकिन एक अच्छा नेता दूसरों से भिन्न होना चाहिए। कोई चार गुण सुझाएं जो एक अच्छे नेता में होने चाहिए।

प्रश्न 25 :- सम्प्रेषण प्रक्रिया के अर्थ एवं महत्व का वर्णन कीजिए।

अध्याय 8

नियन्त्रण

- नियन्त्रण से तात्पर्य संगठन में नियोजन के अनुसार क्रियाओं के निष्पादन से है। नियन्त्रण इस बात का आश्वासन है कि संगठन के पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सभी संसाधनों का उपयोग प्रभावी एवं दक्षतापूर्ण ढंग से हो रहा है।
- नियन्त्रण कार्य को वास्तविक निष्पादन की पूर्व निर्धारित कार्य से तुलना के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।
- नियन्त्रण से निष्पादन एवं मानकों के विचलन का ज्ञान होता है, यह विचलनों का विश्लेषण करता है तथा उन्हीं के आधार उसके सुधार के लिए कार्य करता है।

नियन्त्रण का महत्व :-

- (1) **नियन्त्रण संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता करता है :-** नियन्त्रण संगठन के लक्ष्यों की ओर प्रगति का मापन करके विचलनों का पता लगता है। यदि कोई विचलन प्रकाश में आता है तो उसका सुधार करता है।
- (2) **मानकों की यथार्थता को आँकना :-** एक अच्छी नियन्त्रण प्रणाली द्वारा प्रबन्ध निर्धारित मानकों की यथार्थता तथा उद्देश्य पूर्णता को सत्यापित कर सकता है।
- (3) **संसाधनों का कुशलतम प्रयोग करने में सहायता :-** नियन्त्रण प्रक्रिया द्वारा एक प्रबन्धक संसाधनों का व्यर्थ जाना कम कर सकता है।
- (4) **कर्मचारियों की अभिप्रेरणा में सुधार :-** एक अच्छी नियन्त्रण प्रणाली में कर्मचारियों को पहले से यह ज्ञात होता है कि उन्हें क्या करना है।
- (5) **कार्य में समन्वय की सुविधा :-** नियन्त्रण में प्रत्येक विभाग व कर्मचारी निर्धारित मानकों से बंधा होता है तथा वे आपस में सुव्यवस्थित ढंग से एक दूसरे से भली-भाँति समन्वित होते हैं।
- (6) **आदेश व अनुशासन की सुनिश्चितता :-** नियन्त्रण संगठन में आदेश तथा अनुशासन का वातावरण बनाता है। इसके द्वारा कर्मचारियों की गतिविधियों पर निगरानी रखी जा सकती है।

नियन्त्रण की सीमाएँ/दोष

- (1) **बाह्य घटकों पर अल्प नियन्त्रण :-** सामान्यतौर पर एक संगठन बाहरी घटकों जैसे सरकारी नीतियाँ, तकनीकी नियन्त्रण प्रतियोगिता आदि पर नियन्त्रण नहीं रख पाता।
- (2) **कर्मचारियों से प्रतिरोध :-** अधिकतर कर्मचारी नियन्त्रण का विरोध करते हैं उनके अनुसार नियन्त्रण उनकी स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध है।

(3) **मंहगा सौदा** :- नियन्त्रण में खर्चा, समय तथा प्रयास की मात्रा अधिक होने के कारण यह एक मंहगा सौदा है।

(4) **परिमाणात्मक मानकों के निर्धारण में कठिनाई** :- जब मानकों को परिमाणात्मक शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता तो नियन्त्रण प्रणाली का प्रभाव कम हो जाता है।

नियोजन एवं नियन्त्रण में सम्बन्ध :- नियोजन और नियन्त्रण दोनों ही परस्पर सम्बन्धित हैं तथा दोनों ही एक दूसरे को बल प्रदान करते हैं जैसे :-

- नियोजन जिन तत्वों पर आधारित होता है ये ही नियन्त्रण को सुगम तथा प्रभावी बनाते हैं।
- नियन्त्रण, नियोजन को पिछले अनुभव की सूचनाएँ देकर भविष्य में सुधार लाता है।
- नियोजन की प्रभावशीलता को नियंत्रण की सहायता से मापा जा सकता है। इस प्रकार नियोजन एवं नियंत्रण अपृथक्करणी है। वे एक दूसरे को लागू करते हैं।

- नियोजन निर्धारित किए जाने वाली गतिविधि है तथा नियंत्रण मूल्यांकनकारी।

अतः नियोजन एवं नियंत्रण को पृथक् नहीं किया जा सकता ये दोनों पूरक गतिविधियाँ हैं। नियोजन नियंत्रण को प्रभावी बनाता है जबकि नियंत्रण भावी योजनाओं में सुधार लाता है

नियन्त्रण प्रक्रिया :-

(1) **निष्पादन मानकों का निर्धारण** :- मानक एक मानदंड है जिसके तहत वास्तविक निष्पादन की माप की जाती है अतः मानक मील के पत्थर के समान होता है।

(2) **वास्तविक निष्पादन की माप** :- निष्पादन की माप उद्देश्यपूर्ण तथा विश्वसनीय विधि से होनी चाहिए इसमें व्यक्तिगत देख रेख, नमूना जांच आदि हैं।

(3) **वास्तविक निष्पादन की मानकों से तुलना** :- इस कार्यवाही में वास्तविक निष्पादन की तुलना निर्धारित मानकों से की जाती है। ऐसी तुलना में अन्तर हो सकता है।

(4) **विचलन विश्लेषण** :- मानकों द्वारा विचलनों का पता लगाया जाता है तथा विश्लेषण किया जाता है ताकि विचलनों के कारणों को पहचाना जा सकें।

(5) **सुधारात्मक कार्यवाही करना** :- यह नियन्त्रण प्रक्रिया का अंतिम चरण है। यदि विचलन अपनी निर्धारित सीमा के अन्दर है तो किसी सुधारात्मक कार्यवाही आवश्यकता नहीं पड़ती।

प्रबन्धकीय नियन्त्रण की तकनीकें

पारम्परिक नियन्त्रण तकनीकें

- व्यक्तिगत निरीक्षण
- सांख्यिकीय रिपोर्ट
- बिना लाभ हानि व्यापार विश्लेषण
- बजटीय नियन्त्रण

आधुनिक नियंत्रण तकनीकें

- विनियोगों पर आय
- अनुपात विश्लेषण
- उत्तरदायित्व लेखांकन
- प्रबन्ध अंकक्षण
- प्रबन्ध सूचना विधि
- पी. इ. आर. टी एवं सी. पी. एम

पारम्परिक तकनीकें :- पारम्परिक तकनीकों से तात्पर्य उन तकनीकों से है जिनका उपयोग कम्पनियाँ लम्बे समय से करती चली आ रही है तथा अभी भी इनका प्रयोग कर रही है।

आधुनिक तकनीकें :- इन तकनीकों का जन्म अभी अभी हुआ है। इन तकनीकों से उन नई का विचार धाराओं को जन्म मिलता है जिनके माध्यम से संगठन के विभिन्न क्षेत्रों में उचित नियन्त्रण किया जा सकता है।

बजटीय नियन्त्रण :- यह एक व्यवस्था है जिसमें नियंत्रण के उद्देश्यों के बजटों का प्रयोग किया जाता है। बजट निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु निर्धारित आगामी अवधि के लिए तैयार किए जाने वाला विवरण पत्र होता है।

बजट के प्रकार : बिक्री बजट, उत्पादन बजट, रोकड़ बजट इत्यादि।

बजटीय नियंत्रण एक ऐसी तकनीक है जिसमें प्रबंधको द्वारा सभी कार्यों को बजटीय रूप में पहले से ही नियोजित कर लिया जाता है। तथा इनकी वास्तविक परिणामों एवं बजटीय प्रमापों की तुलना की जाती है। इससे आवश्यकता कदम उठाने में सहायता मिलती है जिससे संगठनात्मक उद्देश्य प्राप्त किए जा सकें :-

नियंत्रण की आधुनिक तकनीकें

(1) ROI- निवेश पर प्रत्यय

ROI : शुद्ध आय/ कुल निवेश x 100

(2) अनुपात विश्लेषण :- (अ) तरलता अनुपात (ब) शोधन क्षमता अनुपात (स) लाभदायकता अनुपात (द) आवर्त अनुपात

पर्ट तथा सीपीएम :-

पर्ट (PERT) : मूल्यांकन एवं पुनर्विचार तकनीक

सीपीएम (CPM) : मुख्य मार्ग विधि

प्रबन्ध सूची प्रणाली

(1) यह ऐसी नियंत्रण तकनीक है। जो प्रबन्धकीय निर्णय हेतु सूचना व सहायता देती है। सही निर्णयों को सही समय पर तभी लिया जा सकता है जब सही एवं समय पर सूचना प्राप्त हो।

(2) यह सूचना प्रणाली कम्प्यूटर आधारित है तथा नवीनतम, सही एवं समय पर सूचना प्रदान करती है। प्रबन्धक समय पर उचित कदम उठाने का निर्णय ले सकते हैं।

(क) अतिलघुस्तरीय प्रश्न :- (1 अंक वाले प्रश्न)

प्रश्न 1 :- नियन्त्रण का अर्थ समझाइए?

प्रश्न 2 :- नियन्त्रण प्रक्रिया का पहला चरण कौन सा है?

प्रश्न 3 :- अच्छी नियन्त्रण प्रणाली की एक विशेषता बताइये?

प्रश्न 4 :- विचलनों के दो प्रकार लिखिए?

प्रश्न 5 :- कौन सा सिद्धान्त इस विचार पर आधारित होता है कि प्रत्येक चीज का नियन्त्रण करने की कोशिश का अन्त कुछ भी नियन्त्रण न कर पाने में होता है?

(ख) लघुस्तरीय प्रश्न :- (3-4 अंक वाले प्रश्न)

प्रश्न 6 :- “नियोजन का कार्य आगे की ओर देखना है जबकि नियन्त्रण पीछे की ओर देखता है” समझाइए।

प्रश्न 7 :- “नियन्त्रण कार्य प्रबन्ध का सर्वव्यापी कार्य है” व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 8 :- बजटरी नियन्त्रण से आप क्या समझते हैं?

प्रश्न 9 :- “सुधारात्मक कार्यवाही नियन्त्रण का सार है” व्याख्या कीजिए।

(ग) दीर्घ स्तरीय प्रश्न (5-6 अंक वाले प्रश्न)

प्रश्न 10 :- नियन्त्रण प्रक्रिया में शामिल विभिन्न चरण समझाइए।

प्रश्न 11 :- संगठन में नियन्त्रण के महत्व की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 12 :- समविच्छेद विश्लेषण क्या है? यह किस प्रकार प्रभावी नियन्त्रण तकनीक है।

प्रश्न 13 :- नियोजन एवं नियन्त्रण एक दूसरे के पूरक हैं ‘कैसे स्पष्ट व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 14 :- बजटरी नियन्त्रण के क्या लाभ हैं?

प्रश्न 15 :- नियन्त्रण की सीमाओं का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 16 :- किन्हीं दो पारम्परिक नियन्त्रण तकनीकों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 17 :- किन्हीं दो आधुनिक नियन्त्रण तकनीकों का वर्णन कीजिए।

अध्याय 9

व्यावसायिक वित्त

परिचय :- व्यावसायिक गतिविधियों को संचालित करने हेतु जिस धन की आवश्यकता होती है उसे व्यावसायिक वित्त कहते हैं। वित्त की आवश्यकता, व्यवसाय के स्थापन, संचालन, आधुनिकीकरण, विस्तार तथा विविधीकरण के लिए होती है।

वित्तीय प्रबन्ध को व्यवसाय में प्रयोग किये जाने वाले कोषों का नियोजन करने, प्राप्त करने, नियन्त्रण करने एवं प्रशासन करने से सम्बन्धित गतिविधि कहा जा सकता है। वित्तीय प्रबंध का संबंध इसकी इष्टतम उपलब्धता तथा वित्त के उपयोग से है। इसका उद्देश्य आवश्यकता के समय पर्याप्त कोषों को उपलब्ध कराने का विश्वास दिलाना भी होता है तथा अनावश्यक वित्त से बचाकर रखना होता है।

वित्तीय प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य अंशधारियों की धन संपदा को अधिकतम करना होता है जिसके लिए अनुकूलतम पूँजी संरचना तथा कोषों का उचित उपयोग आवश्यक है। प्रत्येक संगठन को निम्नलिखित तीन वित्तीय निर्णय लेने पड़ते हैं।

(1) **निवेश निर्णय** :- इस का संबंध इस बात से होता है कि फर्म के कोषों को विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों में कैसे विनियोजित किया जाए। निवेश निर्णय दीर्घकालीन अथवा अल्पकालीन हो सकता है। दीर्घकालीन निवेश निर्णयों को पूँजी बजटिंग निर्णय भी कहा जाता है। इनमें कोषों की बड़ी मात्रा लगती है तथा इन्हें बार-बार परिवर्तित नहीं किया जा सकता है क्योंकि इनका खर्च बहुत अधिक होता है। जबकि अल्पकालीन निवेश निर्णयों को 'कार्यशील पूँजी निर्णय' भी कहा जाता है जो व्यवसाय की दैनिक कार्यवाही को प्रभावित करते हैं।

(2) **वित्तीयन संबंधी निर्णय** :- यह निर्णय दीर्घकालीन स्रोतों से धन प्राप्त करने से सम्बन्धित होते हैं। दीर्घकालीन कोषों के मुख्य स्रोत अंशधारी कोष तथा उधारी निधियाँ हैं। उधारी निधियों पर कंपनी को पूर्व निश्चित दर से ब्याज निश्चित रूप से देना ही होता है, चाहे कम्पनी को लाभ हुआ हो या न हुआ हो। इनका पुनर्भुगतान भी एक निश्चित समय के उपरांत करना ही पड़ता है। भुगतान न करने की चूक को वित्तीय जोखिम कहा जाता है। जबकि अंशधारियों के प्रतिलाभ या पूँजी के पुनर्भुगतान की कोई वचनबद्धता नहीं होती है। एक फर्म वित्त के लिए अंशधारी कोष तथा उधारी निधियों दोनों का मिश्रण प्रयोग करती है।

(3) **लाभांश निर्णय** :- लाभांश, लाभ का वह भाग होता है जिसे अंशधारियों में बांट दिया जाता है। प्रत्येक कम्पनी को यह निर्णय लेना होता है कि लाभ का कितना भाग अंशधारियों में लाभांश के रूप में वितरित करे तथा कितना भाग व्यवसाय में प्रतिधारित करे। लाभांश सम्बन्धी निर्णय लेते समय अंशधारियों की धन सम्पदा को अधिकतम करने के उद्देश्य को भी ध्यान में रखना चाहिए।

वित्तीय नियोजन :- व्यवसाय के लिए कोषों की आवश्यकता का अनुमान लगाने तथा कोषों के स्रोतों को निर्धारित करने की प्रक्रिया को वित्तीय नियोजन कहते हैं। इसके द्वारा यह सुनिश्चित किया जाता है कि अपने वायदों को पूरा करने तथा योजनाओं के अनुसार कार्य करने के लिए फर्म के पास पर्याप्त कोष उपलब्ध हैं। वित्तीय नियोजन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :-

- (1) सही समय पर कोषों की आवश्यकता अनुसार उपलब्धता को सुनिश्चित करना।
- (2) यह देखना कि फर्म अनावश्यक रूप से संसाधनों (कोषों) में वृद्धि न करे।

पूंजी बजटिंग निर्णयों को प्रभावित करने वाले कारक

(1) **परियोजना का रोकड़ प्रवाह :-** विभिन्न परियोजनाओं के जीवन काल के दौरान उनसे क्रमानुसार प्राप्त होने वाली रोकड़ तथा उन पर किये जाने वाले रोकड़ व्ययों के आधार पर उत्तम परियोजना का चुनाव किया जाना चाहिए।

(2) **आय की दर :-** किसी परियोजना की सबसे महत्वपूर्ण कसौटी उससे होने वाली आय तथा उसमें निहित जोखिम होता है। अतः परियोजना का चुनाव करते समय इन का ध्यान आवश्यक होता है।

(3) **शामिल निवेश मानदण्ड :-** विभिन्न निवेश प्रस्तावों का मूल्यांकन अनेक पूंजी बजटिंग तकनीकों के आधार पर किया जाता है निवेश की राशि, ब्याज की दर, रोकड़ प्रवाह तथा आय की दर आदि की गणना करनी पड़ती है।

वित्तीय निर्णय को प्रभावित करने वाले कारक :-

(1) **लागत :-** विभिन्न स्रोतों से कोष प्राप्त करने की लागत भिन्न होती है। मितव्ययी स्रोत से ही कोष प्राप्त करने चाहिए।

(2) **जोखिम :-** विभिन्न स्रोतों में संबंधित जोखिम भिन्न होते हैं उधार लिए गए कोष में स्वामित्व कोष की अपेक्षा अधिक जोखिम होता है क्योंकि ऋण पर ब्याज देना पड़ता है तथा इसे लौटाना भी पड़ता है।

(3) **प्रवर्तन लागत :-** कोषों को प्राप्त करने में कुछ व्यय जैसे - दलाली, अभिगोपन व्यय, प्रविवरण पर व्यय, आदि करने पड़ते हैं जिन्हें प्रवर्तन लागत कहते हैं। जिस स्रोत की प्रवर्तन लागत अधिक होती है वह कम आकर्षक होता है।

(4) **रोकड़ प्रवाह स्थिति :-** यदि कम्पनी की रोकड़ प्रवाह स्थिति अच्छी होती है तो वह आसानी से ऋण प्राप्त कर सकती है।

(5) **नियंत्रण प्रतिफल :-** यदि वर्तमान अंशधारी कम्पनी पर अपना नियंत्रण रखना चाहते हैं तो उधारी निधियों के रूप में कोष प्राप्त किये जा सकते हैं। इसके विपरीत समता अंशों के निगमन से व्यवसाय पर प्रबंध का नियंत्रण ढीला हो जाता है।

(6) **पूंजी बाजार की स्थिति :-** तेजी के दौर में समता प्रतिभूतियों को आसानी से बेचा जा सकता है। जबकि मंदी के दौरान ऋण प्रतिभूतियों की माँग अधिक होती है।

लाभांश निर्णयों को प्रभावित करने वाले कारक

(1) **उपार्जन (आय) :-** जिन कम्पनियों की आय स्थाई तथा अधिक होती है वे अधिक लाभांश दे सकती हैं क्योंकि लाभांश वर्तमान तथा भूतकालीन उपार्जनों में से दिया जाता है।

(2) **लाभांश की स्थिरता :-** प्रायः कम्पनियाँ स्थायी लाभांश नीति अपनाती हैं। यदि कोई कम्पनी लगातार लाभांश देती आ रही है तो वह भविष्य में भी लाभांश देगी।

(3) **विकास सम्भावना :-** यदि निकट भविष्य में कम्पनी के विकास की सम्भावना होती है तो उपार्जन के अधिकांश भाग को वह अपने पास प्रतिधारित राशि के रूप में रख लेती है। अतः कम लाभांश दिया जायेगा।

(4) **रोकड़ प्रवाह स्थिति :-** लाभांश के कारण रोकड़ का बहिर्गमन होता है, अतः पर्याप्त रोकड़ की उपलब्धता होने पर ही लाभांश दिया जा सकता है।

(5) **अंशधारियों की प्राथमिकता :-** लाभांश नीति का निर्धारण करते समय अंशधारियों की प्राथमिकता को भी ध्यान में रखा जाता है। यदि अंशधारी लाभांश की अपेक्षा रखते हैं तो कम्पनी लाभांश दे सकती है।

(6) **करारोपण नीति :-** कम्पनी द्वारा दिये जाने वाले लाभांश पर उसे कर देना पड़ता है अतः कर की दर अधिक होने पर कम्पनी कम लाभांश देती है, जबकि कर की दर कम होने पर कम्पनी अधिक लाभांश दे सकती है।

पूँजी संरचना :-

पूँजी संरचना से अभिप्राय स्वामिगत तथा ग्रहीत निधि उधार कोषों के मिश्रण से है। एक अनुकूल पूँजी संरचना वह होती है जिसमें ऋण एवं समता का अनुपात ऐसा होता है जिससे कि समता अंशों के मूल्य तथा अंश धारकों की धनराशि बढ़ती है।

एक फर्म की समस्त पूँजी में ऋण के अनुपात को **वित्तीय उत्तोलक** अथवा **पूँजी मिलान** कहा जाता है। जब कुल पूँजी में समता अंशपूँजी का भाग कम तथा ऋणों का भाग अधिक होता है तो इसे **उच्च मिलान** कहा जाता है। जबकि कुल पूँजी में ऋणों का भाग कम होने पर **निम्न मिलान** कहा जाता है।

पूँजी संरचना को प्रभावित करने वाले कारक :-

(1) **रोकड़ प्रवाह स्थिति :-** यदि कम्पनी की रोकड़ प्रवाह स्थिति अच्छी होती है तो वह आसानी से ऋण के माध्यम से कोष प्राप्त कर सकती है।

(2) **ब्याज आवरण अनुपात :-** इसके द्वारा यह दर्शाया जाता है कि ब्याज तथा कर काटने से पूर्व लाभ की मात्रा ब्याज से कितने गुना अधिक है। इसके अधिक होने पर कम्पनी ऋणों के माध्यम से वित्त प्राप्त कर सकती है।

(3) **निवेश पर आय :-** यदि ब्याज की दर से निवेश पर प्राप्त आय की दर अधिक होती है तो ऋणों के माध्यम से कोष प्राप्ति अधिक लाभदायक होगी।

(4) **प्रवर्तन लागते** :- यह वे लागते होती है जो अंशो या ऋणपत्रों को निर्गमित किये जाने पर आती है जैसे विज्ञापन व्यय, प्रविवरण की छपाई, अभिगोपन आदि कोषो के लिए प्रयोग की जाने वाली प्रतिभूतियों का चुनाव करते समय प्रवर्तन लागतों का ध्यान रखना चाहिए।

(5) **नियंत्रण** :- यदि वर्तमान अंशधारी कम्पनी पर अपना नियंत्रण रखना चाहते हैं तो ऋणो के माध्यम से कोष प्राप्त किये जा सकते हैं। परन्तु समता अंशों के निर्गमन से व्यवसाय पर प्रबंध का नियंत्रण ढीला हो जाता है।

(6) **कर की दर** :- ऋणो पर ब्याज को कटौती के रूप में स्वीकार किया जाता है। अतः कर दर अधिक होने पर ऋणों के माध्यम से कोष प्राप्त किये जाने चाहिए परन्तु कर दर कम होने पर अंशो के माध्यम से कोष प्राप्त किये जाने चाहिए।

उपरोक्त के अलावा ऋणो की लागत, अंशो की लागत, लोचशीलता, जोखिम आदि अन्य कारक हैं जो पूँजी संरचना को प्रभावित करते हैं।

स्थायी पूँजी तथा उसे प्रभावित करने वाले कारक :- दीर्घकालीन सम्पत्तियों में किये गये निवेश को स्थायी पूँजी कहा जाता है, जो एक लम्बे समय तक प्रयोग की जाती है अतः स्थाई सम्पत्तियों को दीर्घकालीन वित्तीय स्रोतों से ही प्राप्त करना चाहिए। स्थायी पूँजी में बड़ी मात्रा में कोष लगाए जाते हैं तथा ऐसे निर्णयों को भारी क्षति उठाये बिना नहीं बदला जा सकता है। स्थिर पूँजी को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं :-

(1) **व्यवसाय की प्रकृति** :- एक निर्माणी उपक्रम को स्थाई सम्पत्तियों, संयंत्र, मशीनों आदि की अधिक आवश्यकता होती है अतः व्यापारिक उपक्रम के मुकाबले निर्माणी उपक्रम को अधिक स्थायी पूँजी की आवश्यकता होती है।

(2) **संक्रिया का मापदंड** :- बड़े स्तर पर कार्य करने वाले संगठनों को छोटे स्तर पर कार्य करने वाले संगठनों के मुकाबले अधिक स्थाई पूँजी की आवश्यकता होती है। क्योंकि उन्हें बड़ी-बड़ी मशीनों की आवश्यकता होती है।

(3) **तकनीक का विकल्प** :- पूँजी प्रधान तकनीक का प्रयोग करने वाले संगठनों को श्रम प्रधान तकनीक का प्रयोग करने वाले संगठनों से अधिक स्थाई पूँजी आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि उन्हें बड़ी-बड़ी मशीनें लेनी पड़ती है।

(4) **तकनीकी उत्थान** :- जिन उद्योगों में सम्पत्तियाँ शीघ्र ही अप्रचलित हो जाती हैं उन्हें अन्य संगठनों/उद्योगों के मुकाबले अधिक स्थाई पूँजी की आवश्यकता पड़ती है।

(5) **विकास प्रत्याशा** :- ऐसी संस्थाएं जिनके पास उच्च विकास योजना होती है उन्हें अधिक स्थिर पूँजी की आवश्यकता होती है क्योंकि उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिए नये संयंत्र आदि क्रय करने होते हैं।

(6) **विविधीकरण** :- यदि कोई कम्पनी विविधीकरण प्रक्रिया को अपनाती है तो संयंत्र व मशीनों के लिए उसे अधिक स्थाई पूँजी की आवश्यकता होती है।

कार्यशील पूँजी तथा उसे प्रभावित करने वाले कारक

कार्यशील पूँजी वह पूँजी होती है जिस के माध्यम से दैनिक संचालन क्रियाओं को सुगम रूप में संचालित रखने में व्यवसाय को सहायता प्राप्त होती है। स्थाई संपत्तियों में निवेश के अलावा प्रत्येक व्यावसायिक संगठन को चालू सम्पत्तियों में भी निवेश की आवश्यकता होती है जिन्हें एक वर्ष में रोकड़ या रोकड़ के समतुल्यों में परिवर्तित किया जा सकता है। ये सम्पत्तियाँ व्यवसाय को तरलता प्रदान करती हैं। कार्यशील पूँजी दो प्रकार की होती है - **सकल कार्यशील पूँजी** तथा **शुद्ध कार्यशील पूँजी**। सभी चालू सम्पत्तियों में किये गए निवेश को सकल कार्यशील पूँजी कहते हैं। जबकि चालू दायित्व पर चालू सम्पत्तियों के आधिक्य को शुद्ध कार्यशील पूँजी कहते हैं। एक संगठन की कार्यशील आवश्यकताओं को निम्नलिखित कारकों द्वारा प्रभावित किया जाता है।

- (1) **व्यवसाय की प्रकृति** :- एक व्यापारिक उपक्रम को, निर्माणी उपक्रम के मुकाबले कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि इनके द्वारा वस्तु निर्माण सम्बन्धित कोई कार्य नहीं करना पड़ता। ये केवल माल का क्रय एवं विक्रय करते हैं।
- (2) **संचालन का स्तर** :- ऐसे संगठन जो उच्च पैमाने पर व्यवसाय चलाते हैं उन्हें बड़ी मात्रा में स्कन्ध की आवश्यकता होती है अतः उन्हें अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है। जिन संगठनों का व्यापारिक संचालन निम्न कोटि का होता है उन्हें कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है।
- (3) **व्यवसाय चक्र** :- तेजी की दशा में व्यावसायिक गतिविधियाँ बढ़ जाती हैं अतः अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पड़ती है, जबकि मन्दी के दौर में कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है।
- (4) **मौसमी घटक** :- मौसम के चरम या शीर्ष स्तर पर मौसमी व्यवसाय जैसे आइसक्रीम फैक्ट्री को अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है। जबकि मौसम समाप्त हो जाने पर कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है।
- (5) **उधार विक्रय सुविधा** :- उधार नीति अपनाने पर अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है परन्तु नकद माल बेचने पर कार्यशील पूँजी की आवश्यकता कम होती है।
- (6) **उधार क्रय सुविधा** :- यदि कम्पनी कच्चे माल आदि का उधार क्रय करती है तो उसे कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है परन्तु नकद क्रय करने पर अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है।

उपरोक्त के अलावा विकास प्रत्याशा, प्रतियोगिता का स्तर, मुद्रा स्फीति आदि अन्य कारक भी कार्यशील पूँजी की आवश्यकताओं को प्रभावित करती हैं।

समता पर व्यापार अवधारणा

समता पर व्यापार से आशय समता अंशधारियों द्वारा अर्जित लाभ में वृद्धि का होना है। जिसका कारण स्थाई वित्त व्यय जैसे ब्याज की मात्रा को परिरक्षित रखना है। समता पर व्यापार तब होता है जब आयों की दर उस लागत से अधिक होती है जिस पर कोषों को उधार लिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप

अंशधारियों को प्रतिअंश उच्च दर से लाभांश प्राप्त होता है।

एक अंक वाले प्रश्न

- (1) उस अवधारणा का नाम बताईए जिसके कारण पूँजी संरचना में परिवर्तन कर के समता अंशों की आय की दर बढ़ जाती है।
- (2) एक कम्पनी नई इकाई स्थापित करना चाहती है जिसमें रू. 10 लाख की मशीनरी लगेगी। वित्तीय प्रबन्ध में शामिल निर्णय का प्रकार बताइए।
- (3) वित्तीय प्रबन्ध का प्राथमिक उद्देश्य क्या है?
- (4) वित्तीय जोखिम से क्या अभिप्राय है?
- (5) सेवा उद्योग में कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता क्यों होती है।

तीन/चार अंक वाले प्रश्न

- (1) पूँजी बजटिंग निर्णयों से क्या अभिप्राय है? इन्हें प्रभावित करने वाले तीन कारकों का वर्णन कीजिए?
- (2) वित्तीय नियोजन से क्या अभिप्राय है। इसके उद्देश्य बताईए?
- (3) वित्तीय प्रबन्ध को परिभाषित करते हुए उसके उद्देश्यों का वर्णन कीजिए?
- (4) वित्तीय उत्तोलन तथा समता पर व्यापार का वर्णन कीजिए।
- (5) एक संगठन द्वारा लिये जाने वाले विभिन्न वित्तीय निर्णयों का वर्णन कीजिए।

पाँच/छः अंक वाले प्रश्न

- (1) पूँजी संरचना से क्या अभिप्राय है? इसे प्रभावित करने वाले पाँच कारकों का वर्णन कीजिए।
- (2) स्थाई पूँजी आवश्यकताओं का प्रभावित करने वाले छः कारकों का वर्णन कीजिए।
- (3) चालू कार्यशील पूँजी से क्या अभिप्राय है? इसे प्रभावित करने वाले पाँच कारकों का वर्णन कीजिए।
- (4) लाभांश निर्णयों से क्या अभिप्राय है? इन्हें प्रभावित करने वाले पाँच कारकों का वर्णन कीजिए।
- (5) निम्नलिखित निर्माणी उपक्रम में कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पर सुझाव दीजिए।
(क) ब्रेड (ख) चीनी (ग) कूलर (घ) मोटर कार (च) लोकोमोटिव (छ) विशिष्ट आदेश पर निर्मित फर्नीचर।

अध्याय 10

वित्त बाजार

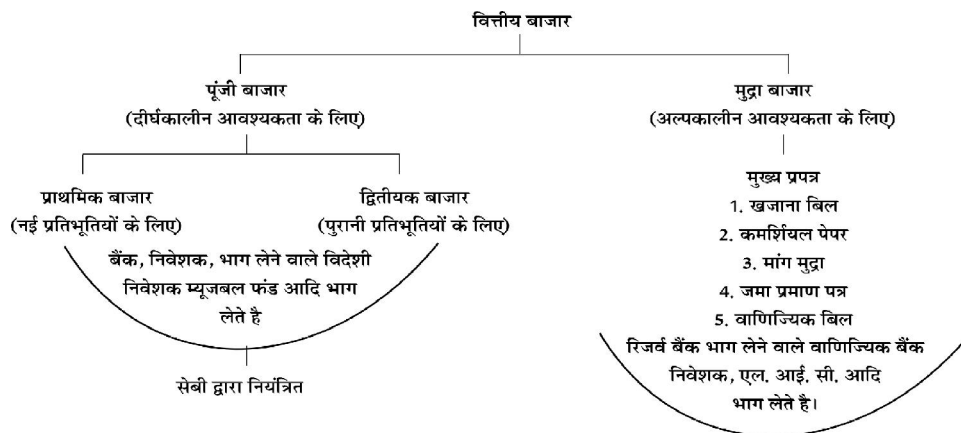
परिचय :- वित्तीय बाजार वित्तीय सम्पत्तियों जैसे अंश, बांड आदि के सृजन एवं विनिमय करने वाला बाजार होता है। यह बचतों को गतिशील बनाता है तथा उन्हें सर्वाधिक उत्पादक उपयोगों की ओर ले जाता है। यह बचतकर्ताओं तथा उधार प्राप्तकर्ताओं के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करता है तथा उनके बीच कोषों को गतिशील बनाता है। वह व्यक्ति/संस्था जिसके माध्यम से कोषों का आबंटन किया जाता है उसे वित्तीय मध्यस्थ कहते हैं। वित्तीय बाजार के निम्नलिखित कार्य होते हैं।

(1) बचतों को गतिशील बनाना तथा उन्हें अधिकाधिक उत्पादक उपयोग में सरणित करना :- वित्तीय बाजार बचतों को बचतकर्ता से निवेशकों तक अंतरित करने को सुविधापूर्ण बनाता है। अतः यह अधिशेष निधियों को सर्वाधिक उत्पादक उपयोग में सरणित करने में मदद करते हैं।

(2) कीमत निर्धारण में सहायक :- वित्तीय बाजार बचतकर्ता तथा निवेशकों को मिलता है। बचतकर्ता कोषों की पूर्ति करते हैं जबकि निवेशक कोषों की मांग करते हैं जिसके आधार पर वित्तीय सम्पत्तियों को कीमत का निर्धारण होता है।

(3) वित्तीय सम्पत्तियों को तरलता प्रदान करना :- वित्तीय बाजार द्वारा वित्तीय सम्पत्तियों के क्रय-विक्रय को सरल बनाया जाता है। इसके माध्यम से वित्तीय सम्पत्तियों को कभी भी खरीदा या बेचा जा सकता है।

(4) लेन-देन की लागत को घटाना :- वित्तीय बाजार, प्रतिभूतियों के विषय में महत्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध कराते हैं जिससे समय, प्रयासों एवं धन की बचत होती है। परिणाम स्वरूप लेन-देन की लागत घट जाती है।



मुद्रा बाजार :- यह छोटी अवधि की निधियों का बाजार है जिनकी परिपक्वता अवधि एक वर्ष तक की होती है। इस बाजार के प्रमुख प्रतिभागी भारतीय रिजर्व बैंक, व्यापारिक बैंक, गैर बैंकिंग, वित्त कम्पनियाँ, राज्य सरकारें, म्युचुअल फंड आदि हैं। मुद्रा बाजार के महत्वपूर्ण प्रलेख निम्नलिखित हैं।

(1) **राजकोष/कोषागार प्रपत्र (ट्रेजरी बिल) :-** इन्हें केन्द्रीय सरकार की तरफ से भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जारी किया जाता है जिन की परिपक्व अवधि एक वर्ष से कम होती है। इन्हें अंकित मूल्य से कम पर जारी किया जाता है परन्तु भुगतान के समय अंकित मूल्य दिया जाता है। राजकोष बिल 25000 रू. के न्यूनतम मूल्य और इसके बाद बहुगुणन में प्राप्त होते हैं।

(2) **वाणिज्यिक (तिजारी) पत्र :-** यह एक अल्पकालिक आरक्षित वचन पत्र होता है जिन्हें विशाल एवं उधार पात्रता कम्पनियों द्वारा अल्पकालिक बाजार दर से कम दर पर निधि उगाहने के लिए जारी किया जाता है। इनकी परिपक्वता अवधि प्रायः 15 दिन से लेकर एक वर्ष तक होती है तथा ये विनिमय साध्य एवं हस्तान्तरणीय होते हैं।

(3) **शीघ्रावधि द्रव्य (मांग मुद्रा) :-** यह एक लघुकालिक माँग पर पुर्नभुगतान वित्त है जिसकी परिपक्वता अवधि एक दिन से 15 दिन तक की होती है तथा अंतर बैंक अंतरण के लिए उपयोग किया जाता है जिससे भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार नकद रिजर्व अनुपात बनाया जा सके। शीघ्रावधि द्रव्य ऋण पर जो ब्याज दिया जाता है उसे शीघ्रावधि दर कहा जाता है।

(4) **बचत/जमा प्रमाण पत्र :-** यह एक धारक प्रमाणपत्र होता है जो बेचनीय होता है तथा जिसे वाणिज्यिक बैंको एवं विकास वित्त संस्थानों द्वारा जारी किया जाता है। इनके द्वारा अल्पावधि के लिए बड़ी राशि प्राप्त की जा सकती है। इनकी समता अवधि 91 दिन से एक वर्ष होती है।

(5) **वाणिज्यिक बिल :-** यह एक विनिमय प्रपत्र होता है जो व्यावसायिक फर्मों की कार्य पूंजी की आवश्यकता के लिए वित्तीयन में प्रयुक्त होता है। इनका प्रयोग उधार क्रय विक्रय की दशा में किया जाता है। इसे विक्रेता द्वारा क्रेता पर लिखा जाता है। जब क्रेता इसे स्वीकार करता है तो यह विपत्र विपणन योग्य विलेख बन जाता है तथा इसे व्यापारिक/वाणिज्यिक विपत्र कहते हैं इसे देय तिथि से पहले बट्टे पर बैंक से भुनाया जा सकता है।

पूँजी बाजार :- यह दीर्घकालिक निधियों जैसे ऋणपत्रों तथा अंशपत्रों का बाजार है जो एक लम्बे समय के लिए जारी की जाती हैं। इस के अंतर्गत विकास बैंक, वाणिज्यिक बैंक तथा स्टॉक एक्सचेंज समाहित होते हैं। पूँजी बाजार को दो भागों में बाँटा जा सकता है। (1) प्राथमिक बाजार (2) द्वितीयक बाजार

प्राथमिक बाजार :- इसे नए निर्गमन बाजार के रूप में भी जाना जाता है। यहाँ केवल नई प्रतिभूतियों को निर्गमित किया जाता है जिन्हें पहली बार जारी किया जाता है। इस बाजार में निवेश करने वालों में बैंक, वित्तीय संस्थाएँ, बीमा कम्पनियाँ, म्युचुअल फण्ड एवं व्यक्ति होते हैं। इस बाजार का कोई निर्धारित भौगोलिक स्थान नहीं होता है।

द्वितीयक बाजार :- इसे स्टॉक एक्सचेंज या स्टॉक बाजार के नाम से भी जाना जाता है। जहाँ विद्यमान प्रतिभूतियों का क्रय एवं विक्रय किया जाता है। यह बाजार निर्धारित स्थान पर स्थित होता है तथा

यहाँ प्रतिभूतियों की कीमत को उन की माँग एवं पूर्ति के द्वारा तय किया जाता है।

प्राथमिक बाजार में प्रतिभूतियों को निर्गमित करने की विधियाँ :-

- (1) **विवरण पत्रिका के माध्यम से प्रस्ताव :-** इसके अन्तर्गत विवरण पत्रिका जारी करके जनता से अंशदान आमंत्रित किया जाता है। एक विवरण पत्रिका पूँजी उगाहने के लिए निवेशकों से प्रत्यक्ष अपील करती है जिसके लिए अखबारों एवं पत्रिकाओं के माध्यम से विज्ञापन जारी किए जाते हैं।
- (2) **विक्रय के लिए प्रस्ताव :-** इस विधि के अन्तर्गत निर्गमन गृहों या ब्रोकर्स जैसे माध्यकों के द्वारा प्रतिभूतियों को बिक्री के लिए प्रस्तावित किया जाता है। कम्पनी द्वारा ब्रोकर्स को सहमति मूल्य पर प्रतिभूतियों को बेचा जाता है जिन्हें वो निवेशक जनता को अधिक मूल्य पर पुनः विक्रय करते हैं।
- (3) **निजी नियोजन :-** एक कम्पनी द्वारा संस्थागत निवेशकों तथा कुछ चयनित वैयक्तिक निवेशकों को प्रतिभूतियों का आवंटन करने की प्रक्रिया को निजी नियोजन कहा जाता है।
- (4) **अधिकार निर्गम :-** यह एक विशेषाधिकार है जो विद्यमान शेयर धारकों को पहले से क्रय किए हुए शेयरों के अनुपात में नए शेयरों को खरीदने का अधिकार देता है।
- (5) **ई - आरंभिक सार्वजनिक निर्गम :-** यह स्टॉक एक्सचेंज की ऑन-लाइन प्रणाली के माध्यम से प्रतिभूतियाँ जारी करने की विधि है। स्टॉक एक्सचेंज की ऑन-लाइन प्रणाली के माध्यम से जनता को पूंजी को प्रस्तावित करने वाली कम्पनी को स्टॉक एक्सचेंज से एक ठहराव करना होता है जिससे ई-आरंभिक सार्वजनिक प्रस्ताव कहते हैं। इसके लिए सेबी के साथ पंजीयत दलालों को आवेदन स्वीकार करने हेतु नियुक्त किया जाता है।

पूँजी बाजार तथा मुद्रा बाजार में अन्तर

| आधार | पूँजी बाजार | मुद्रा बाजार |
|-------------------|---|--|
| 1. सहभागी | वित्तीय संस्थाएँ, बीमा कम्पनियाँ बैंक, अन्तरराष्ट्रीय निवेशक तथा व्यक्ति निवेशक | भारतीय रिजर्व बैंक, व्यापारिक बैंक, गैर बैंकिंग वित्त कम्पनियाँ राज्य सरकारें, म्युचुअल फण्ड |
| 2. मुख्य प्रपत्र | समता अंश, बाण्ड, ऋण पत्र, पूर्वाधिकारी अंश | कोषागार प्रपत्र, वाणिज्यिक पत्र मांग मुद्रा, जमा प्रमाण पत्र, वाणिज्यिक बिल |
| 3. निवेश राशि | निवेश हेतु बहुत बड़ी राशि की आवश्यकता नहीं होती है। | मुद्रा बाजार में लेन देन हेतु बहुत बड़ी राशि की आवश्यकता होती है। |
| 4. परिपक्वता अवधि | मध्य तथा दीर्घ अवधि के कोषों में व्यवहार किया जाता है। | अल्प-अवधि वाले कोषों में व्यवहार किया जाता है। |
| 5. तरलता | मुद्रा बाजार के मुकाबले कम तरलता होती है। | पूँजी बाजार के मुकाबले अधिक तरलता होती है। |

- | | | |
|--------------------|----------------------------------|--|
| 6. संभावित प्रतिफल | अधिक आय प्राप्त होने की सम्भावना | पूँजी बाजार के मुकाबले कम आय प्राप्त होने की सम्भावना। |
| 7. सुरक्षा | अधिक जोखिम होता है। | कम जोखिम होता है। |

प्राथमिक बाजार तथा द्वितीयक बाजार में अन्तर

| आधार | प्राथमिक बाजार | द्वितीयक बाजार |
|-------------------------|---|---|
| 1. प्रतिभूतियां | केवल नई प्रतिभूतियों को निर्गमित किया जाता है। | विद्यमान प्रतिभूतियों को निर्गमित किया जाता है। |
| 2. प्रतिभूतियों की कीमत | कम्पनी के प्रबन्ध के द्वारा प्रतिभूतियों की कीमत निर्धारित की जाती है। | प्रतिभूतियों की कीमत उनकी मांग तथा पूर्ति के द्वारा निर्धारित की जाती है। |
| 3. बाजार का स्थान | इस बाजार का कोई निर्धारित भौगोलिक स्थान नहीं होता है। | ये बाजार निर्धारित स्थानों पर ही विद्यमान है। |
| 4. क्रय व विक्रय | यहाँ केवल प्रतिभूतियों को क्रय किया जाता है। | यहाँ प्रतिभूतियों का क्रय एवं विक्रय दोनों होते हैं। |
| 5. माध्यम | यहाँ कम्पनी द्वारा सीधे या मध्यस्थ के माध्यम से प्रतिभूतियों को बेचा जाता है। | यहाँ निवेशक प्रतिभूतियों का स्वामित्व बदलते हैं। |

स्टॉक एक्सचेंज/शेयर बाजार

स्टॉक एक्सचेंज एक ऐसा संस्थान है जो विद्यमान प्रतिभूतियों के क्रय एवं विक्रय हेतु एक मंच उपलब्ध कराता है। इसके माध्यम से प्रतिभूतियों जैसे अंश, ऋण पत्र आदि को मुद्रा में तथा मुद्रा को प्रतिभूतियों में परिवर्तित किया जा सकता है। स्टॉक एक्सचेंज के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं।

(1) **विद्यमान प्रतिभूतियों को द्रवता एवं विनियोग उपलब्ध कराना** :-स्टॉक एक्सचेंज द्वारा प्रतिभूतियों के क्रय एवं विक्रय हेतु तैयार एवं सतत् बाजार उपलब्ध कराया जाता है।

(2) **प्रतिभूतियों का मूल्यन** :- स्टॉक एक्सचेंज निरन्तर मूल्यांकन द्वारा प्रतिभूतियों से सम्बन्धित विभिन्न सूचनाएँ उपलब्ध कराता है जिससे उनके मूल्यन में सहायता मिलती है। प्रतिभूतियों की कीमत क्रेता तथा विक्रेता द्वारा उनकी मांग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा तय की जाती है।

(3) **लेन-देन की सुरक्षा** :- शेयर बाजार की सदस्यता बेहतर प्रकार से नियंत्रित होती है तथा यहाँ विद्यमान कानूनी ढांचे के अनुसार ही कार्य होता है जो निष्पक्ष लेन-देन सुनिश्चित करता है।

(4) **आर्थिक विकास में योगदान** :- शेयर बाजार के माध्यम से बचतों को गतिशील बनाया जाता है तथा उन्हें सर्वाधिक उत्पादक निवेश पथों में सरणित किया जाता है। अतः यह पूँजी निर्माण एवं आर्थिक विकास में योगदान देता है।

(5) **इक्विटी संप्रदाय का प्रसार** :- शेयर बाजार जनता को प्रतिभूतियों में निवेश के बारे में शिक्षित

करता है जिससे इक्विटी संप्रदाय का प्रसार होता है।

(6) सट्टेबाजी के लिए अवसर उपलब्ध कराना :- शेयर बाजार कानूनी प्रावधान के अंतर्गत प्रतिबंधित एवं नियंत्रित तरीके से सट्टा संबंधी क्रियाकलापों के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध करता है।

स्टॉक एक्सचेंज में लेन देन की प्रक्रिया

(1) दलाल का चयन करना :- स्टॉक एक्सचेंज पर लेन-देन करने के लिए सर्वप्रथम दलाल का चयन किया जाता है, जो की स्टॉक एक्सचेंज का सदस्य होना चाहिए क्योंकि स्टॉक एक्सचेंज पर लेनदेन हेतु वही अधिकृत होते हैं।

(2) आदेश देना :- दलाल के चयन के बाद निवेशक प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय का आदेश देता है।

(3) आदेश का निष्पादन :- दलाल द्वारा निवेशक के आदेश के अनुसार प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय किया जाता है।

(4) निपटान :- स्टॉक एक्सचेंज में लेन-देन नकद आधार अथवा कैरी ओवर आधार (बदला) पर किए जाते हैं। वह अवधि जिसमें लेनदेन किए जाते हैं को आगे ले जाने को एकाउन्ट्स कहते हैं जो एक पखवाड़े से एक महा तक का हो सकता है। एक एकाउन्ट के दौरान सभी लेनदेन क्रय के भुगतान द्वारा तथा अंश प्रमाणपत्रों की सुपुर्दगी द्वारा निपटाये जाते हैं।

पहले शेयर बाजार में व्यापार एक सार्वजनिक चिल्लाहट या नीलामी प्रणाली में माध्यम से किया जाता था। अब इसकी जगह ऑनलाइन स्क्रीन आधारित इलेक्ट्रॉनिक व्यापार प्रणाली ने ले ली है। इसके अतिरिक्त चोरी, धोखाधड़ी, अंतरण विलंबन आदि से बचने के लिए प्रतिभूतियों के अंतरण एवं भवन/धारण हेतु एक इलेक्ट्रॉनिक बुक प्रविष्टि प्रपत्र को प्रस्तुत किया है जिसे प्रतिभूतियों का विद्रव्यी अभौतिकीकरण कहते हैं।

भारत का राष्ट्रीय शेयर बाजार (NSE)

NSE अग्रणी वित्तीय संस्थानों, बैंको, बीमा कम्पनियों तथा अन्य वित्तीय मध्यस्थों द्वारा 1992 में स्थापित किया गया था। इसे अप्रैल 1993 में शेयर बाजार के रूप में मान्यता दी गई थी। इसने राष्ट्रव्यापी विस्तृत स्क्रीन आधारित स्वाचलित व्यापार प्रणाली, उच्च अंश की पारदर्शिता एवं समान पहुँच से उपलब्ध कराई है, बिना किसी भू-भौगोलिक स्थिति की सीमा में बँधे हुए *NSE* की स्थापना निम्नलिखित उद्देश्यों के साथ हुई थी।

- (1) सभी प्रकार की प्रतिभूतियों हेतु राष्ट्रव्यापी व्यापार सुविधा स्थापित करना।
- (2) एक औचित्यपूर्ण संचार नेटवर्क के द्वारा पूरे देश भर में निवेशकों की समान पहुँच सुनिश्चित करना।
- (3) लघु भुगतान चक्र तथा पुस्तक प्रविष्टि निपटान के योग्य बनाना।

(4) ई-व्यापार प्रणाली का उपयोग करते हुए एक निष्पक्ष सक्षमतापूर्ण तथा पारदर्शी प्रतिभूति बाजार उपलब्ध कराना।

(5) अंतर्राष्ट्रीय ऊचाइयों एवं मानकों को पूरा करना

NSE निम्नलिखित दो खंडों को बाजार उपलब्ध कराता है।

(क) थोक विक्रय ऋण बाजार खंड जो व्यापक दायरे की स्थिर आय प्रतिभूतियों के लिए एक व्यापार मंच प्रदान करता है जिसके अंतर्गत केन्द्रीय सरकार की प्रतिभूतियाँ, राजकोष बिल, राज्य विकास ऋण, सार्वजनिक निगमों द्वारा बंध पत्र आदि आते हैं।

(ख) पूँजी बाजार खंड जहाँ अंशपत्र, ऋणपत्र आदि के साथ फुटकर सरकारी प्रतिभूतियों के लिए मंच उपलब्ध कराया जाता है।

भारतीय अधिप्रतिदावा पटल शेयर बाजार (*OTCEI*)

इसे यूटीआई, आईसीआईसीआई, एलआईसी, जीआईसी, आईडीबीआई, आईएफसीआई, एसबीआई पूँजी बाजार तथा कैन बैंक फाइनेंसियल सर्विसेज के द्वारा प्रोत्साहित किया गया है। इसे एक ऐसी जगह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जहाँ क्र्रेता, विक्रेता की तलाश में रहता है या विक्रेता क्र्रेता की तलाश में रहता है तथा दोनों ही पार्टियों के लिए स्वीकार्य खरीद-फरोख्त के नियम व शर्तें व्यवस्थित करता है इसका उद्देश्य कम व्यापार की जाने वाली प्रतिभूतियों को एक स्थिर एवं निष्पक्ष मूल्य पर त्वरित द्रवता प्रदान करना है। इसमें लेनदेन कम्प्यूटर नेटवर्क के माध्यम से होते हैं तथा इसका कोई भौगोलिक रूप से निश्चित स्थान नहीं है। ओटीसी बाजार के निम्नलिखित लाभ हैं।

(1) यह छोटी एवं कम द्रवता वाली कम्पनियों को एक व्यापार मंच उपलब्ध कराता है जो शेयर बाजार में सूचीबद्ध होने योग्य नहीं होती है।

(2) यह एक पारदर्शी व्यापार प्रणाली है जिसमें खराब या अधूरी डिलीवरी की समस्या नहीं है।

(3) परिवार संबद्ध तथा निकटबद्ध कम्पनियों ओ.टी.सी के माध्यम से सार्वजनिक की जा सकती है।

(4) यह निवेशक को व्यापक स्वतंत्रता देता है। वह प्राथमिक तथा द्वितीयक दोनों बाजारों में लेन-देन कर सकता है।

(5) यह लागत प्रभावी उपाय है, क्योंकि नए निगमों की लागत कम होती है तथा निवेशकों को सेवा देने हेतु कम खर्चा आता है।

***NSEI* तथा *OTCEI* में अन्तर करो**

| आधार | एनएसईआई | ओटीसीईआई |
|----------------|----------------------------|------------------------------|
| 1. स्थापना | 1992 | 1990 |
| 2. चुकता पूँजी | चुकता पूँजी 3 करोड़ व अधिक | चुकता पूँजी 30 लाख रू व अधिक |
| 3. निपटान | 15 दिनों के अन्दर | 7 दिनों के अन्दर |
| 4. व्यवहार की | समता अंश, ऋणपत्र, | समता अंश, ऋणपत्र |

| | | |
|------------------------|--|---|
| जाने वाली प्रतिभूतियाँ | खजाना बिल, कॉमर्शियल पेपर आदि | आदि |
| 5. उद्देश्य | राष्ट्रीय स्तर पर एक स्टॉक एक्सचेंज स्थापित करना | छोटी कम्पनियों के सूचियन की सुविधा उपलब्ध करवाना। |

डिपजिटरी सेवाएं एवं डीमेट खाता : अंशों के भौतिक रूप में हस्तान्तरण से सम्बन्धी कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए सेबी ने एक नई पद्धति का विकास किया जिसके अन्तर्गत शेयरों की ट्रेडिंग इलेक्ट्रॉनिक रूप में ही हो सकती है। डिपजिटरी सेवा एवं डिमेट खाता इसके आधार है :-

डिपजिटरी सेवाएं :- भारत में आजकल कम्पनी के अंशों का क्रय विक्रय आन लाइन पेपर रहित हो गया है। डिपजिटरी सेवा इसी पद्धति का नाम है। इस पद्धति के अन्तर्गत अंशों के स्वामित्व का हस्तान्तरण बिना भौतिक सुपुर्दुगी के केवल बुक इन्ट्री के माध्यम से होता है। एक निवेशक को अपना डी-मेट खाता किसी खुलवाना पड़ता है। जिसके माध्यम से वह अंशों का व्यवहार करता है। इसके चार पक्षकार होते हैं :-

(1) **डिपजिटरी :-** वह संस्थान जहां निवेशक अपने अंशों के इलेक्ट्रॉनिक रूप में रखता है। इस समय भारत में ये दो संस्थान हैं। एन. एस. डी. एल, 2. सी. एस. डी. एल।

(2) **डिपजिटरी पार्टिसिपेंट :-** यह निवेशकों के खाते खोलता है उसके अंशों का हिसाब रखता है।

(3) **निवेशक :-** वह व्यक्ति जो अंशों में व्यवहार करता है उसके नाम का रिकार्ड रखा जाता है।

(4) **अंश जारीकर्ता कम्पनी :-** वह संगठन जो प्रतिभूतियां जारी करती है। यह कम्पनी अंशधारियों की एक सूची डिपजिटरी के पास भेजती है।

डिमेट खाता :-

इस प्रक्रिया के अन्तर्गत अंश प्रमाण पत्र को भौतिक रूप से इलेक्ट्रॉनिक रूप में बदला जाता है और उतने ही संख्या में अंश डिमेट खाते में जमा कर दिये जाते हैं।

डिमेट खाते के लाभ :-

- (1) कागजी कार्यवाही में कमी होती है।
- (2) अंशों के हस्तान्तरण के समय चोरी, देरी, क्षति होना आदि समस्याएं समाप्त हो जाती हैं।
- (3) अंशों के हस्तान्तरण के व्यवहार करने पर स्टाम्प ड्यूटी नहीं लगती।
- (4) अंशों की विषम संख्या धारणा की समाप्ति।
- (5) प्रतिभूतियों के सेटलमेंट जल्दी होती है।
- (6) इस पद्धति से विदेशी निवेशक आकर्षित होते हैं तथा विदेशी निवेश में वृद्धि होती है।

डिपजिटरी पद्धति बैंकिंग पद्धति के समान :-

डिपजिटरी पद्धति बैंकिंग पद्धति के समान है। जिस तरह एक बैंक अपने ग्राहकों का रूपया खाते में जमा रखता है उसी तरह डिपजिटरी पद्धति में प्रतिभूतियों को ग्राहकों के खाते में जमा रखा जाता है। जिस तरह बैंक नकदी का हस्तान्तरण करता है उसी तरह डिपजिटरी के माध्य से प्रतिभूतियों का हस्तान्तरण किया जाता है।

भारतीय प्रतिभूति एवं विनियम बोर्ड (सेबी)

भारत सरकार ने सेबी की स्थापना 12 अप्रैल 1988 को एक प्रशासकीय निकाय के रूप में की थी। जिसके द्वारा प्रतिभूति बाजार के नियमित एवं स्वस्थ वृद्धि तथा निवेशकों की संरक्षा को बढ़ावा प्रदान हो सके। 30 जनवरी 1992 को सेबी को एक अध्यादेश के द्वारा वैधानिक निकाय का दर्जा दिया गया तथा बाद में संसद के अधिनियम के रूप में सेबी अधिनियम के रूप में सेबी अधिनियम 1992 में बदल दिया गया। सेबी के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं।

- (1) शेयर बाजार तथा प्रतिभूति उद्योग को विनियमित करना ताकि क्रमबद्ध ढंग से उनकी क्रियाशीलता को बढ़ावा मिले।
- (2) निवेशकों को संरक्षण प्रदान करना तथा उनके अधिकारों एवं हितों की रक्षा करना।
- (3) व्यापार दुराचारों को रोकना तथा पूंजी बाजार को अधिक प्रतिस्पर्द्धी एवं पेशेवर बनाना।
- (4) मध्यस्थों जैसे दलालों, मर्चेन्ट बैंकर्स आदि के लिए आचार संहिता विकसित करना तथा उन्हें विनियमित करना।

सेबी के कार्य

| विनियामक कार्य | विकास कार्य | संरक्षणात्मक कार्य |
|---|---|---|
| 1) नियम एवं अधिनियम बनाना | 1) मध्यस्थों को प्रशिक्षण देना | 1) आन्तरिक लेनदेनों को रोकना |
| 2) मध्यस्थों का पंजीयन करना रोकना | 2) शोध कार्य करना तथा उपयोगी सूचनाओं का प्रकाशन | 2) प्राथमिकता आबंटन को रोकना |
| 3) कम्पनियों के अधिग्रहण का विनियमन करना | 3) निवेशकों को शिक्षित करना | 3) अनुचित व्यापार व्यवहारों को रोकना |
| 4) सामूहिक निवेश योजनाओं तथा म्युचुअल फंडों का पंजीकरण। | 4) इन्टरनेट ट्रेडिंग के लिए पंजीयन स्कन्ध दलालों की आज्ञा देना। | 4) विनियोजकों का संरक्षण करना |
| 5) आंतरिक व्यापार एवं नियंत्रणकारी बोलियों पर नियंत्रण | 5) लोचदार अभिगम अपनाकर पूंजी बाजार के विकास का कार्य | 5) कीमत रिगिंग को रोकना |
| 6) अधिनियम अनुसार अधिशुल्क या कोई अन्य प्रभार लगाना | | 6) प्रतिभूति बाजार से सम्बन्धित नियम अधिनियम बनाना। |

एक अंक वाले प्रश्न

- (1) वाणिज्यिक प्रपत्र की परिपक्वता अवधि क्या है?
- (2) कोषागार विपत्र क्या है?
- (3) एबी लि० ने अपने प्रत्येक 10 रू वाले समता अंशों को 12 प्रति अंश के हिसाब से निवेश बैंकों को बेचा, जिसने 20 रू. प्रति अंश की दर से सार्वजनिक निर्गमन का प्रस्ताव किया। चलायमान की इस विधि को बताइए?
- (4) पूँजी बाजार के दो प्रमुख विलेख बताइए?
- (5) कौन प्रतिभूति बाजार का रखवाला कहलाता है?
- (6) मांग मुद्रा के लेनदार कौन है?
- (7) जीरो कूपन बॉन्ड का दूसरा नाम क्या है?
- (8) ट्रेजरी बिल किस के द्वारा जारी किया जाता है?
- (9) प्राथमिक बाजार का दूसरा नाम क्या है?
- (10) प्रविवरण पत्र क्या है?
- (11) डिमेटरलाइजेशन क्या है?
- (12) ट्रेजरी बिल की न्यूनतम राशि क्या है?
- (13) डीमेट खाता क्या है?
- (14) डीमेट खाते का एक लाभ लिखिये?

तीन/चार अंक वाले प्रश्न

- (1) सेबी के संरक्षणात्मक कार्य बताइए?
- (2) मुद्रा बाजार क्या है? इसके तीन विलेखों का वर्णन कीजिए।
- (3) वाणिज्यिक पेपर तथा जमा प्रमाणपत्र से क्या अभिप्राय है।
- (4) एनएसईआई (NSEI) तथा ओटीसीईआई (OTCEI) में निम्नलिखित के आधार पर अन्तर बताइए?
 - (क) कम्पनी का आकार
 - (ख) लेनदेन वाली प्रतिभूतियाँ
 - (ग) उद्देश्य
 - (घ) निपटान
- (5) सेबी के किन्हीं चार विनियामक कार्यों को बताइए?
- (6) प्राथमिक बाजार तथा द्वितीयक बाजार के बीच कोई चार अन्तर करो।

पाँच/छः अंक वाले प्रश्न

- 1) स्टॉक एक्सचेंज के पाँच/छः कार्यों का वर्णन कीजिए।

- 2) सेबी को क्यों बनाया गया था? इसके विकासात्मक कार्य बताइए।
- 3) प्राथमिक बाजार में प्रतिभूतियों को निर्गमित करने की पाँच विधियों का वर्णन कीजिए।
- 4) स्टॉक एक्सचेंज में लेन देन की प्रक्रिया का वर्णन करो।
- 5) पूंजी बाजार तथा मुद्रा बाजार में निम्न के आधार पर अन्तर करो।
(क) सहभागी (ख) मुख्य प्रपत्र (ग) परिपक्वता अवधि (घ) संभावित प्रतिफल
(च) सुरक्षा (छ) तरलता
- 6) 'प्राथमिक बाजार प्रत्यक्ष रूप से पूंजी निर्माण करता है तो द्वितीयक अप्रत्यक्ष रूप से' व्याख्या कीजिए?
- 7) आप वित्त विशेषज्ञ हैं आपके पिताजी के अनुसार प्राथमिक एवं द्वितीयक बाजार में कोई अन्तर नहीं है किन्तु आप सहमत नहीं हैं। उन्हें किस प्रकार अन्तर समझाएंगे। अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दीजिए।
- 8) डिपाजिटरी सेवाओं एवं डीमेट खाते के लाभों का वर्णन कीजिए?
- 9) डिपाजिटरी सर्विस के पक्षकारों का वर्णन कीजिए।
- 10) मोहन टाटा मोटर कम्पनी के 50 शेयर बेचना चाहता है उसे शेयर बेचने की प्रक्रिया समझाइये?

अध्याय 11

विपणन प्रबन्ध

विपणन प्रबन्ध व्यापार का महत्वपूर्ण कार्य क्षेत्र है विपणन प्रबन्ध वस्तुओं तथा सेवाओं के नियोजन, संगठन, निर्देशन तथा गतिविधियों के नियंत्रण की प्रक्रिया है ताकि ग्राहक की आवश्यकताएँ संतुष्ट की जा सकें एवं संगठनात्मक उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

बाजार :- वह स्थान जहाँ क्रेता तथा विक्रेता मिलते हैं तथा क्रय विक्रय की गतिविधियाँ संपादित करते हैं। आज क्रेता तथा विक्रेता एक स्थान पर मिले बगैर व्यापार कर सकते हैं - टेलीफोन द्वारा, पत्र द्वारा, इंटरनेट द्वारा।

विपणन :- यह एक सामाजिक प्रक्रिया है जहाँ लोग मुद्रा अथवा कोई वस्तु जो उनके लिए महत्वपूर्ण हो, के बदले वस्तुओं एवं सेवाओं का आदान प्रदान करते हैं।

कोई भी वस्तु जो किसी दूसरे के लिए कीमती है, उसका विपणन किया जा सकता है।

1. भौतिक उत्पाद - टी. वी., सैल फोन आदि
2. सेवाएं - बीमा, शिक्षा आदि
3. व्यक्ति - विभिन्न पदों के लिए उम्मीदवारों का चुनाव
4. स्थान - 'आगरा' ताजमहल आदि।

विपणन की महत्वपूर्ण विशेषताएँ

1. अपेक्षा एवं आवश्यकता :- व्यक्तियों तथा संगठनों की आवश्यकताओं तथा इच्छा की संतुष्टि
2. उत्पाद का सृजन :- उत्पाद तथा सेवाओं का सम्पूर्ण प्रस्ताव
3. ग्राहक के योग्य मूल्य :- ज्यादा लाभ/मुद्रा के बदले महत्व।
4. विनिमय पद्धति :- उत्पाद तथा सेवाओं का मुद्रा अथवा किसी मूल्यवान वस्तु के साथ आदान प्रदान।

विपणन के कार्य/विपणन गतिविधियाँ :-

1. विपणन अनुसंधान :- सूचनाओं को एकत्रित करना तथा विश्लेषण करना। ग्राहक क्या खरीदना चाहता है? कब खरीदना चाहता है। कितनी मात्रा में कहाँ खरीदना चाहता है।
2. विपणन नियोजन :- विपणन योजनाओं का निर्माण जिसमें उत्पाद का स्तर बढ़ाने, उत्पादों का संवर्धन करने इत्यादि की योजनाएँ शामिल होनी चाहिए तथा इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए गतिविधियों का कार्यक्रम बनाना चाहिए।
3. उत्पाद का रूपांकन एवं विकास :- विपणन कर्ताओं को यह निर्णय लेना चाहिए कि किस उत्पाद

का निर्माण करें? किस मॉडल तथा आकार का चुनाव करें? इत्यादि ताकि ग्राहक की आवश्यकताओं की संतुष्टि हो पाए।

4. क्रय तथा एकत्रीकरण :- जैसे कार, कच्चा माल जैसे स्टील, टायर बैटरियाँ, सीटें, स्टीयरिंग व्हील, बिजली के लैंप तार सामग्री, पेंट, छोटे रबड़ के हिस्से, पेच इत्यादि विभिन्न स्रोतों से खरीदता है तथा उसे पूर्ण उत्पाद (कार) में बदल देता है।

5. पैकेजिंग एवं लेबलिंग :- उत्पाद के लिए पैकेट तथा लेबलिंग का निर्माण

6. ब्रांडिंग :- निर्माणकर्ता को पहचान पाने तथा प्रतियोगियों के उत्पाद से अलग पहचान बनाना उदाहरण :- विडियोकॉन वाशिंग मशीन।

विपणन की संकल्पनाएँ/दर्शनशास्त्र

1) **उत्पादन की अवधारणा** :- बड़े स्तर पर उत्पादन कर लाभों को अधिकतम किया जा सकता है। बड़े स्तर पर उत्पादन से अतः उत्पादन की औसतन कीमत घटाई जा सकती है। दोष :- ग्राहक हमेशा ऐसा उत्पाद नहीं खरीदना चाहता जो सस्ता हो

2) **उत्पाद की अवधारणा** :- व्यवसायिक क्रिया का केन्द्र बिन्दु अब निरंतर गुणवत्ता में सुधार तथा वस्तु को नया स्वरूप प्रदान करना हो गया है।

3) **बिक्री की अवधारणा** :- ग्राहक को उत्पाद खरीदने के लिए सहमत करने के लिए उसे समझना, ललचाना तथा आकर्षित करना आवश्यक है।

विपणन प्रबन्ध :- विपणन प्रबन्ध से तात्पर्य विपणन कार्यों का प्रबन्ध करना है। जैसे :- 1) लक्षित बाजार को चुनना, (2) मांग की उत्पत्ति (3) ग्राहक के लिए उच्च मूल्यों का निर्माण, विकास तथा संप्रेषण करना (4) बाजार अंश (5) साख (6) विपणन गतिविधियों का नियोजन तथा नियंत्रण करना।

विपणन मिश्रण :- विपणन मिश्रण से तात्पर्य उन तत्वों अथवा उपकरणों अथवा उन चरों से है जिन्हें विपणनकर्ता विशिष्ट बाजार में उतरने के लिए मिश्रित करता है।

विपणन मिश्रण के तत्व/घटक

1. उत्पाद मिश्रण - उत्पाद संबंधित निर्णय जैसे अनेक उत्पादों का निर्माण अर्थात् बहुउत्पादी उदाहरण :- हिन्दुस्तान लिवर लि० (कोलगेट, लाइफबॉय आदि)

तत्व :- ब्रांडिंग, पैकिंग, लेबलिंग

2. कीमत मिश्रण - वह वैल्यू जिसे क्रेता उत्पाद अथवा सेवाएं उपलब्ध करवाने के बदले विक्रेता को अदा करता है।

तत्व :- कम्पनी के उद्देश्य, लागत, प्रतियोगिता, ग्राहकों की मांग

3. संवर्धन मिश्रण :- ग्राहकों को फर्म के उत्पादों की सूचना प्रदान करना एवं वह उत्पाद खरीदने के लिए उकसाना।

तत्व :- व्यक्तिगत विक्रय, विज्ञापन, लोकप्रियता, विक्रय संवर्धन

4. स्थान मिश्रण :- (भौतिक वितरण मिश्रण) वितरण से संबंधित निर्णय

(1) उपयोग किये जाने वाले विपणन मध्यस्थों के संबंध में निर्णय (जैसे थोक विक्रेता, खुदरा विक्रेता आदि)

(2) उत्पादक से उपभोक्ता के पास उत्पाद पहुँचाना।

(3) भण्डारण, परिवहन, कच्चे माल का प्रबन्ध आदि।

उत्पाद :- कोई भी वस्तु जिसे बाजार में आवश्यकता तथा जरूरतों को संतुष्ट करने के लिए प्रस्तावित किया जाता है।

उपभोक्ता वस्तुएँ :- जो अंतिम उपभोक्ताओं अथवा उपयोगकर्ताओं द्वारा क्रय किए जाते हैं, ताकि उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताएँ एवं इच्छाएँ संतुष्ट हो सकें उदाहरण :- साबुन, खाद्यतेल, वस्त्र आदि।

औद्योगिक उत्पाद :- वह उत्पाद जिन्हें दूसरे उत्पाद बनाने के लिए आगत के रूप में प्रयोग किया जाता है :- कच्चा माल, मशीने आदि।

विस्तृत अध्ययन,

उत्पाद मिश्रण :- मुख्य तत्व निम्नलिखित है।

1. **ब्रांडिंग :-** को हम नाम, चिह्न, हस्ताक्षर अथवा उत्पाद के डिजाइन को प्रयोग करने की प्रक्रिया के रूप में स्पष्ट कर सकते हैं। उदाहरण :- पेप्सी, नाईकि आदि।

एक अच्छे ब्राण्ड नाम के गुण :-

1. **साधारण एवं सूक्ष्म :-** ब्राण्ड का नाम छोटा होना चाहिए जैसे :- टाटा, बाटा

2. **सरल उच्चारण :-** ब्राण्ड का नाम ऐसा होना चाहिए जो आसानी से बोला जा सके जैसे लक्स, डालडा।

3. **सुझावात्मक :-** ब्राण्ड का नाम ऐसा होना चाहिए जो उत्पाद के गुण बताये जैसे उजाला अधिक सफेदी बताता है।

4. **भिन्न :-** ब्राण्ड का नाम ऐसा होना चाहिए जो अलग नजर आये जैसे टाइड, पर्क आदि।

ब्राण्ड के लाभ :-

1. ब्राण्ड नाम से विज्ञापन में आसानी रहती है।

2. उत्पाद की स्थायी पहचान बन जाती है।

3. उपभोक्ता आसानी से पहचान जाता है।

4. पुनः विक्रय को प्रोत्साहन मिलता है।

(2) **पैकेजिंग :-** उत्पाद का डिब्बा अथवा कागज तैयार करना। अच्छी पैकिंग अक्सर उत्पाद को बेचने में मदद करती है। इसलिए इसे शांत विक्रयकर्ता कहा जाता है।

पैकेजिंग के कार्य :-

1. **उत्पाद पहचान :-** पैकेजिंग उत्पाद पहचान का कार्य करती है।
2. **उत्पाद सुरक्षा :-** पैकेजिंग का मुख्य कार्य धूल, मकोड़े, नमी व टूट फूट से सुरक्षा प्रदान करना है।
3. **सुविधा :-** पैकेजिंग उत्पाद को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने, स्टॉक करने व उपभोग करने में सुविधा प्रदान करती है।
4. **उत्पाद संवर्धन :-** पैकेजिंग से विक्रय संवर्धन का काम सरल हो जाता है।

पैकेजिंग के लाभ या महत्व :-

(1) **स्वास्थ्य व स्वच्छता बनाए रखने का स्तर ऊंचा होता है :-** लोगों के स्वास्थ्य के प्रति अधिक सचेत होने के कारण वे पैकड वस्तुएं खरीदना पसंद करते हैं। क्योंकि इनमें मिलावट की सम्भावना कम होती है।

(2) **नवीनता के अवसर :-** पैकेजिंग के लगातार बढ़ते उपयोग से इस क्षेत्र में शोधकर्त्ताओं को नवीनता के अवसर प्राप्त हुए हैं।

(3) **उत्पादों का विभेदीकरण :-** पैकेज के रंग, पदार्थ व आकार के कारण क्रेता उत्पाद की क्वालिटी में अन्तर को जान सकता है।

3. लेबलिंग के कार्य :-

1. उत्पाद का विवरण एवं विषय वस्तु की जानकारी देना।
2. उत्पाद अथवा ब्राण्ड की पहचान कराना।
3. उत्पादों का श्रेणीकरण करना।
4. उत्पाद के प्रवर्तन में सहायता करना।
5. कानून सम्मत जानकारी देना।

मूल्य मिश्रण :- मूल्य से अभिप्राय उस भुगतान से होता है जो क्रेता वस्तुएँ या सेवाएँ क्रय करने के लिए विक्रेता को करता है।

मूल्य रणनीतियाँ :-

- (1) मलाई उतारने वाली कीमत (प्राइस स्कीमिंग) :- प्रारंभिक अवस्था में उच्च कीमतें ताकि स्थिर लागत जल्दी वसूली जा सके।
- (2) प्रवेश करने वाली कीमत (पैनेट्रेशन प्राइसिंग) :- कम मूल्य का उपयोग कर बड़े बाजार अंश पर कब्जा।

मूल्य निर्णय/मूल्य निर्धारण को प्रभावित करने वाले कारक :- (1) एक फर्म के उत्पाद तथा सेवाओं के मूल्य फर्म के मूल्य उद्देश्यों से प्रभावित होते हैं। उदाहरण :- छोटे अंतराल में अधिकतम लाभ कमाने के लिए अधिकतम कीमत लेना। (2) वस्तु की लागत - मूल्यों की निम्नतम सीमाएँ निर्धारित करती है।

(3) बाजार में प्रतियोगिता की सीमा :- जब फर्म किसी प्रतियोगिता का सामना नहीं कर रही होती तो यह मूल्य निर्धारण करने में पूर्ण स्वतंत्रता का मजा ले सकती है।

(4) उपयोगिता एवं मांग :- अधिक मांग - अधिक कीमत

कभी-कभी - कम कीमत - अधिक मांग

यह उत्पाद की उपयोगिता पर निर्भर करती है।

स्थान मिश्रण/भौतिक वितरण मिश्रण :- निर्माता से उपभोक्ता तक वस्तुओं की भौतिक गतिशीलता से संबंधित सभी गति विधियां जैसे

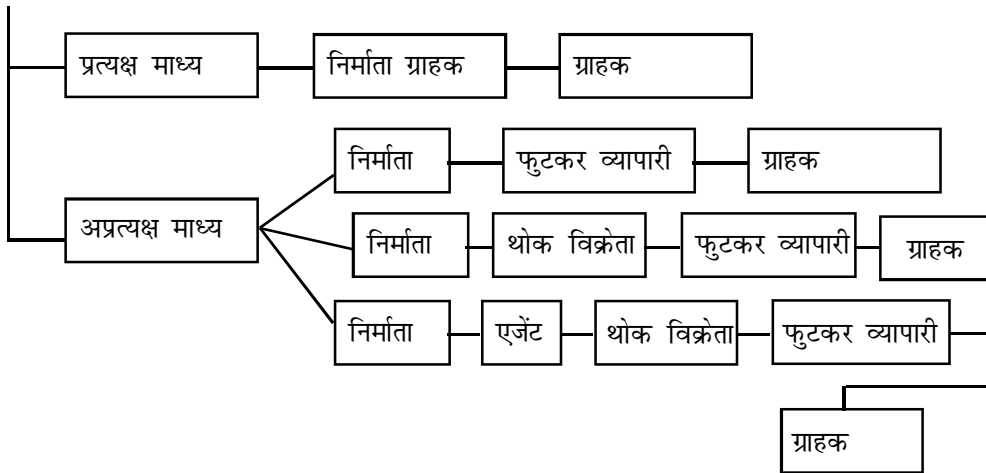
(1) आदेश का प्रक्रियण :- ग्राहको के आर्डर को समय पर उपलब्ध करवाना जिससे व्यवसायिक लाभ एवं साख बढ़ेगी।

(2) परिवहन :- वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जहां इनकी आवश्यकता होती है पहुँचकर वस्तुओं की उपयोगिता में वृद्धि करता है।

(3) संग्रहित माल पर नियंत्रण :- स्टॉक में कितना माल हमेशा बनाए रखा जाए, यह वितरण उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है तथा लागत एवं ग्राहक संतुष्टि में संतुलन बना रहें।

(4) भंडारण :- गोदाम संग्रहण की आवश्यकता इसलिए उत्पन्न होती है क्योंकि उत्पाद के उत्पादन समय तथा उपभोग के समय में बड़ा अंतर होता है।

वितरण माध्य



वितरण माध्य के चुनाव को निर्धारित करने वाले कारक :- वितरण माध्य चुनाव एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विपणन निर्णय है जो कि संगठन के निष्पादन को प्रभावित करता है कि एक संगठन प्रत्यक्ष

विपणन स्रोत का चुनाव करेगा अथवा लम्बे स्रोतों का चुनाव करेगा जिसमें अनेक मध्यस्थ शामिल होंगे।

संवर्धन मिश्रण/प्रवर्तन मिश्रण :-

विपणन कर्ता द्वारा संचार के विभिन्न उपकरण या तत्वों को अपने ग्राहकों को सूचना देने तथा उनसे

वितरण माध्य के चुनाव को प्रभावित करने वाले कारक

| बाजार संबंधित कारक | उत्पाद संबंधित कारक | कंपनी संबंधित कारक |
|-------------------------------------|---|---|
| बाजार का आकार एवं प्रकृति | उत्पाद का इकाई मूल्य उत्पाद जटिलता | कम्पनी की वित्तीय शक्ति नियंत्रण का स्तर |
| भागौलिक सकेन्द्रण आदेशों का आकार | उत्पाद की प्रकृति क्षयशील बनाम गैर क्षयशील उत्पाद | प्रबंध |

आग्रह करने हेतु अपनाया जाता है।

उपकरण

1. **विज्ञापन** : संवर्द्धन का सर्वाधिक प्रभावी उपकरण माना जाता है। यह संचार का अवैयक्तिक रूप है जो विपणनकर्ता द्वारा अपने उत्पाद या सेवा के संवर्द्धन के लिए अपनाया जाता है। जिसके लिए भुगतान किया जाता है।

सर्वाधिक विधियाँ - समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, टेलीविजन, रेडियों

विज्ञापन की भूमिका या महत्व :-

1. ग्राहकों की संतुष्टि एवं विश्वास में वृद्धि
2. उत्पादों की मांग में वृद्धि में सहायक
3. बाजार क्षेत्र के वृद्धि में सहायक
4. अधिक रोजगार बढ़ाने में सहायक
5. देश में आर्थिक विकास में सहायक
6. विभिन्न उत्पादों का ज्ञान
7. शोषण का डर नहीं।

विज्ञापन के विरुद्ध आक्षेप :-

1. लागतों में वृद्धि
2. सामाजिक मूल्यों की अवहेलना
3. क्रेताओं को भ्रमित करना

4. घटिया उत्पादों की बिक्री को प्रोत्साहित करना।

5. कुछ विज्ञापन रूचिकर नहीं होते।

2. विक्रय संवर्धन :- वह लघु आवधिक प्रेरक जो ग्राहकों को उत्पाद अथवा सेवाओं को तुरंत क्रय करने के लिए उकसाते हैं।

विक्रय संवर्धन की तकनीकें :-

(1) **कटौती :-** ज्यादा माल खत्म करने के लिए विशेष मूल्य पर उत्पाद प्रस्तावित करना।

(2) **छूट :-** मूल्यों पर छूट देकर क्रेताओं को ज्यादा क्रय करने के लिए प्रेरित करना।

(3) **नमूनों का वितरण :-** ग्राहक को मुफ्त नमूना देना, उसे उत्पाद का प्रयोग करने तथा उसका आदी हो जाने के लिए तैयार करना।

(4) **लक्की ड्रा :-** उदाहरण वस्त्रों के क्रय पर लक्की ड्रा के कूपन देना तथा कार जीतने का प्रस्ताव। विपणन कर्ता द्वारा संचार के विभिन्न उपकरण या तत्वों को अपने ग्राहकों को सूचना देने तथा उनसे आग्रह करने हेतु अपनाया जाता है।

(5) 0 प्रतिशत पर पूरा वित्त प्रदान करना।

(6) प्रतियोगिता करवाना।

3. व्यक्तिगत विक्रय :- व्यक्तिगत विक्रय का अभिप्राय किसी वस्तु के सम्भावित क्रेताओं से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करना है।

व्यक्तिगत विक्रय की विशेषता :-

1. व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित होता है।

2. मौखिक वार्तालाप

3. संदेहों का तुरन्त समाधान

4. अतिरिक्त सूचनाओं की प्राप्ति

5. सम्बन्धों का विकास होता है।

एक अच्छे विक्रय कर्ता के गुण :-

(1) **शारीरिक गुण :-** शारीरिक गुणों के अन्तर्गत व्यक्तित्व, कार्य शक्ति, स्वास्थ्य एवं सहनशीलता को शामिल किया जाता है।

(2) **मानसिक गुण :-** मानसिक गुणों में चातुर्य, तीव्र स्मरण शक्ति, पहल करने की शक्ति एवं आत्मविश्वास शामिल किया जाता है।

(3) **सामाजिक गुण :-** सामाजिक गुणों में अच्छा चरित्र एवं मधुर स्वभाव को शामिल किया जाता है।

(4) **व्यवसाय सम्बन्धी गुण :-** उत्पादों की जानकारी, प्रशिक्षण एवं रूचि को शामिल किया जाता है।

4. प्रचार

यह विज्ञापन की भांति है। यह सम्प्रेषण का अव्यक्तिगत रूप है। विज्ञापन की तुलना में यह सम्प्रेषण का गैर मौद्रिक रूप है। यदि एक निर्माता कार इंजन का निर्माण करता है जो कि पेट्रोल के बजाय पानी से चलती है तथा यह संदेश, टी. वी., रेडियों, अखबार द्वारा प्रसारित होता है तो इसे प्रचार कहा जाता है। क्योंकि इंजन निर्माता को कोई लागत लगाए बिना ही लाभ प्राप्त होता है।

लाभ :- जनता तक पहुँच, खबर की तरह फैलना

सीमाएँ :- यह फर्म के नियंत्रण में नहीं है।

सार्वजनिक सम्बन्ध :-

सार्वजनिक सम्बन्ध किसी संगठन और उसका पब्लिक के बीच पारस्परिक समझ स्थापित करने व उसे बनाये रखने के लिए किया गया विचारपूर्वक नियोजित एवं सतत् प्रयास है।

सार्वजनिक सम्बन्धों की विशेषता :-

1. जनता से सहयोग प्राप्त करना।
2. विभिन्न समूहों को सन्तुष्ट करना।
3. संवाद स्थापित करना।
4. यह लगातार चलने वाली प्रक्रिया है।
5. इसमें जनता से सफल सम्बन्ध बनाये जाते हैं।

सार्वजनिक सम्बन्ध की भूमिका :-

1. यह सस्ता माध्यम है।
2. इस से ब्रिकी में वृद्धि होती है।
3. जनता में संगठन की छवि बनती है।
4. इसमें जनता का ध्यान आसानी से खींचा जाता है।

सार्वजनिक सम्बन्ध स्थापित करने की विधियाँ :-

1. इसमें भाषणों का प्रयोग किया जा सकता है।
2. जनता में छपी हुई सामग्री बांटी जा सकती है।
3. सार्वजनिक स्थल या पार्क के देखभाल की जिम्मेदारी ली जा सकती है।
4. बालदिवस आदि पर सुविधाएं दी जा सकती हैं।

विपणन प्रबंध के महत्वपूर्ण प्रश्न

1 अंक वाले प्रश्न

- (1) वर्तमान संदर्भ में विपणन प्रबन्ध को परिभाषित करें।

- (2) विपणन प्रबन्ध के एक उद्देश्य को रेखांकित करें।
- (3) विपणन अनुसंधान क्या है।
- (4) उत्पाद मिश्र का क्या अर्थ है?
- (5) एक ट्रेड मार्क क्या होता है?
- (6) कौन सा विपणन दर्शन उपभोक्ता सन्तुष्टि के स्थान पर उपभोक्ता कल्याण को अधिक महत्व देता है।
- (7) विपणन अवधारणा का कोई एक स्तम्भ बताइये।
- (8) उस माध्यम का नाम बताइये जब उत्पादक माल मध्यस्थों को न बेच कर सीधे ही उपभोक्ताओं को बेचते हैं।
- (9) एक रोटी का डिब्बा किसान साँस के साथ मुफ्त मिलना संवर्धन मिश्रण की एक विधि है। उस विधि का नाम बताइये?
- (10) कोई दो ब्रांड नाम लिखिए जो आजकल बाजार में उपलब्ध हैं?
- (11) सुविधा जनक उत्पाद का कोई एक लक्ष्य बताइये?
- (12) 'टूथपेस्ट की ट्यूब में पैकिंग' किस प्रकार की पैकेजिंग का उदाहरण है।
- (13) उस विपणन अवधारणा का नाम बताइये जो संगठन को अधिक उत्पादन द्वारा लाभ कमाने के लिए प्रेरित करती है।
- (14) उन दो उत्पादों के नाम बताइये जो श्रेणीकरण की प्रक्रिया द्वारा अलग किये जाते हैं।
- (15) विपणन मिश्र के उस तत्व का नाम बताइये जिसके द्वारा उत्पाद लक्षित ग्राहकों को उपलब्ध करवाया जाता है।

3 एवं 4 अंक वाले प्रश्न

- (1) लेबलिंग से ग्राहकों को होने वाले तीन लाभों का वर्णन कीजिए?
- (2) विपणन और विक्रय में निम्न आधारों पर अन्तर कीजिए?
 - (1) अर्थ (2) क्षेत्र (3) उद्देश्य
- (3) विज्ञापन व व्यक्तिगत विक्रय में कोई तीन अन्तर लिखिए।
- (4) विक्रय संवर्द्धन के कोई तीन लाभ लिखिए।
- (5) पैकेजिंग के किन्हीं चार कार्यों का वर्णन कीजिए।
- (6) विज्ञापन भ्रान्ति उत्पन्न करता है क्या आप सहमत हैं कारण बताइयें।
- (7) एक अच्छे विक्रयकर्ता के गुणों का वर्णन कीजिए।

5 एवं 6 अंक वाले प्रश्न

- (1) विपणन प्रबन्ध के विभिन्न कार्यों को स्पष्ट कीजिए?

- (2) विपणन मिश्र के चार महत्वपूर्ण तत्वों का वर्णन कीजिए?
- (3) उन चार घटकों का वर्णन कीजिए जिन पर वितरण के माध्यम का चुनाव करते हैं?
- (4) 'विज्ञापन घटिया उत्पादों की बिक्री को प्रोत्साहन देता है' क्या आप सहमत हैं? कारण बताइये।
- (5) एक संगठन के लिए सार्वजनिक सम्बन्ध क्यों महत्वपूर्ण है?
- (6) एक अच्छे ब्रांड की किन्ही चार विशेषताओं का वर्णन कीजिए?
- (7) विक्रय संवर्द्धन की किन्ही तीन विधियों का वर्णन कीजिए?

अध्याय 12

उपभोक्ता संरक्षण

उपभोक्ताओं को उत्पादकों एवं विक्रेताओं के अनुचित व्यवहारों से बचाना उपभोक्ता संरक्षण कहलाता है। इसके माध्यम से न केवल उपभोक्ताओं को उनके अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों के बारे में शिक्षित किया जाता है अपितु उनकी शिकायतों का निवारण भी किया जाता है।

उपभोक्ताओं के दृष्टिकोण से उपभोक्ता संरक्षण का महत्व

- (1) **उपभोक्ताओं की अज्ञानता :-** अधिकांश उपभोक्ताओं को अपने अधिकारों एवं उपलब्ध समाधानों का ज्ञान नहीं होने के कारण उनका शोषण किया जाता है। अतः उपभोक्ताओं को शोषण से बचाने के लिए उपभोक्ता संरक्षण की आवश्यकता है।
- (2) **असंगठित उपभोक्ता :-** भारत में उपभोक्ता अभी भी असंगठित है तथा यहां उपभोक्ता संगठनों की कमी भी है जिस के कारण उपभोक्ता संरक्षण आवश्यक है।
- (3) **उपभोक्ताओं का व्यापक शोषण :-** उपभोक्ताओं का बड़े पैमाने पर अनुचित व्यवहारों से शोषण किया जाता है अतः उन्हें शोषण से बचाने के लिए उपभोक्ता संरक्षण की आवश्यकता है।

व्यवसाय के दृष्टिकोण से उपभोक्ता संरक्षण का महत्व

- (1) **व्यवसाय का दीर्घ अवधिक हित :-** वैश्वीकरण के पश्चात अब प्रतियोगिता विश्व स्तर की हो गई है। अतः व्यवसाय बाजार का बड़ा अंश केवल तभी जीता जा सकता है जब वे अपने उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अपने उत्पाद का विकास करें।
- (2) **नैतिक औचित्य :-** यह किसी भी व्यवसाय की नैतिक जिम्मेदारी होती है कि वह उपभोक्ता के हितों की रक्षा करे तथा किसी भी प्रकार की गलत गतिविधियों, जैसे दोषपूर्ण तथा असुरक्षित उत्पाद, मिलावट, झूठ तथा धोखेबाज विज्ञापन इत्यादि से बचे।
- (3) **व्यवसाय समाज के संसाधनों का प्रयोग करता है :-** प्रत्येक व्यवसाय द्वारा समाज के संसाधनों का प्रयोग किया जाता है अतः यह उनका कर्तव्य हो जाता है कि वे समाज के हित में कार्य करें।
- (4) **सामाजिक उत्तरदायित्व :-** व्यवसाय का विभिन्न समूहों जैसे स्वामियों, कर्मचारियों, सरकार, उपभोक्ताओं आदि के प्रति सामाजिक उत्तर दायित्व है अतः उपभोक्ताओं को उचित कीमत पर सही गुणवत्ता वाली वस्तुएं उपलब्ध की जानी चाहिए।
- (5) **सरकारी हस्तक्षेप :-** यदि कोई व्यवसाय शोषणकारी गतिविधियों में लिप्त होता है तो सरकार द्वारा हस्तक्षेप किया जाता है जिससे उसकी साख पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 :-

उपभोक्ताओं को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करने तथा उन्हें कानूनी संरक्षण प्रदान करने के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 बनाया गया था। इसके अनुसार उपभोक्ता की परिभाषा निम्नलिखित है।

(1) कोई भी व्यक्ति जो प्रतिफल के बदले माल को क्रय करता है इसमें क्रेता की स्वीकृति से माल का उपयोगकर्ता भी शामिल है परन्तु इसमें ऐसा व्यक्ति शामिल नहीं है जो माल को पुनः विक्रय के लिए खरीदता है।

(2) कोई भी व्यक्ति जो प्रतिफल के बदले सेवा को किराये पर लेता है। इसमें सेवाओं का लाभग्राही भी शामिल है परन्तु इसमें ऐसा व्यक्ति शामिल नहीं है जो सेवा को वाणिज्यिक उद्देश्य से प्राप्त करता है।

उपभोक्ता के अधिकार :-

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 में उपभोक्ताओं को छः अधिकार दिये गए हैं जो निम्नलिखित हैं।

(1) **सुरक्षा का अधिकार :-** इसका अभिप्राय है स्वास्थ्य के लिए हानिकारक उत्पादों, तथा सेवाओं के विरुद्ध संरक्षण प्राप्त करना। (उदाहरण आईएसआई चिन्ह वाले बिजली के उपकरणों का उपयोग)। उपभोक्ता को ऐसी वस्तुओं तथा सेवाओं से सुरक्षा का अधिकार होता है जिनसे उसे कोई हानि हो सकती है।

(2) **सूचना प्राप्त करने का अधिकार :-** इसका अभिप्राय है उपभोक्ता का वस्तुओं एवं सेवाओं की गुणवत्ता आदि के संबंध में पूर्ण सूचना प्राप्त करना ताकि वह खरीदने से पूर्व ठीक निर्णय ले सकें।

(3) **चुनाव/चयन का अधिकार :-** उपभोक्ता को उपलब्ध वस्तुओं तथा सेवाओं में से अपनी इच्छानुसार चयन/चुनाव करने का अधिकार है।

(4) **शिकायत का अधिकार :-** उपभोक्ता को अधिकार है कि वह वस्तुओं अथवा सेवाओं से असंतुष्ट होने की स्थिति में उपयुक्त मंच अथवा अधिकारी के समक्ष शिकायत दर्ज कर सके।

(5) **क्षतिपूर्ति का अधिकार :-** उपभोक्ता के पास अधिकार है कि यदि किसी वस्तु अथवा सेवा से उसे कोई हानि हुई है तो वह क्षतिपूर्ति/उपचार पा सकता है।

(6) **उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार :-** उपभोक्ता को आजीवन भली प्रकार सूचना प्राप्त करने तथा जानकारी प्राप्त करे का अधिकार है। इसके माध्यम से उपभोक्ता जागरूक बना रह सकता है।

उपभोक्ता के दायित्व/जिम्मेदारी

(1) **उपभोक्ता को अपने अधिकारों का उपयोग करना चाहिए :-** उपभोक्ता को बाजार से क्रय की गई वस्तुओं अथवा सेवाओं के संबंध में अपने अधिकारों की जानकारी होनी चाहिए ताकि उन का प्रयोग किया जा सके।

(2) **उपभोक्ता को सावधान उपभोक्ता होना चाहिए :-** उत्पाद अथवा सेवाएं क्रय करते समय उपभोक्ता को सदैव जागरूक रहना चाहिए ताकि शोषण से बचा जा सके।

(3) उपभोक्ता को शिकायत अवश्य दर्ज करवानी चाहिए :- प्राप्त की गई किसी वस्तु अथवा सेवा में कमी निकलने पर उपभोक्ता को उपयुक्त फोरम में अपनी शिकायत अवश्य दर्ज करवानी चाहिए।

(4) केश-मेमो लेना चाहिए :- उपभोक्ता को केश मीमो पर जोर देना चाहिए जो कि क्रय का सबूत होता है।

(5) उपभोक्ता को गुणवत्ता जागरूक होना चाहिए :- उपभोक्ता को केवल मानक वस्तुएँ ही खरीदनी चाहिए जैसे बिजली के उपकरण पर आईएसआई चिन्ह, खाद्य उत्पादों पर एफपीओ तथा गहनो पर हालमार्क का चिन्ह आदि देखकर ही खरीदना चाहिए।

(6) विज्ञापन विसंगतियों की जानकारी :- उपभोक्ता को विज्ञापन सम्बन्धित विसंगतियों को प्रयोजक की जानकारी में लाना चाहिए।

किन परिस्थितियों में शिकायत दर्ज करवाई जा सकती है :-

- व्यापारी तथा निर्माता धोखाधड़ी की गतिविधियाँ करते हैं।
- यदि वस्तुएँ दोषपूर्ण हैं।
- यदि किराए पर ली गई सेवाओं में कोई कमी है।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के अंतर्गत उपचार एजेंसियाँ

- जिला फोरम :- उन वस्तुओं/सेवाओं के लिए जिन का मूल्य तथा मांगा गया हर्जाना 20 लाख रुपये तक है।

- राज्य कमीशन :- उन वस्तुओं/सेवाओं के लिए जिन का मूल्य तथा मांगा गया हर्जाना 20 लाख से 1 करोड़ रुपये तक है या जो जिला फोरम के निर्णय से सन्तुष्ट नहीं हैं।

- राष्ट्रीय कमीशन :- उन वस्तुओं/सेवाओं लिए जिनका मूल्य तथा मांगा गया हर्जाना 1 करोड़ से अधिक है और जो राज्य आयोग के निर्णय से सन्तुष्ट नहीं हैं।

किस अंतराल के अंतर्गत शिकायत दर्ज करवाई जानी चाहिए?

शिकायत तीन माह के भीतर दर्ज करवा देनी चाहिए। यदि किसी परीक्षण की आवश्यकता हो तो पाँच माह में भी दर्ज करवा सकते हैं।

शिकायत कौन दर्ज करवा सकता है?

- कोई उपभोक्ता
- कोई मान्य उपभोक्ता संघ
- केन्द्रीय सरकार अथवा कोई राज्य सरकार
- पीड़ित उपभोक्ता का कानूनी उत्तराधिकारी अथवा प्रतिनिधि

उपभोक्ता को उपलब्ध उपचार

- वस्तु अथवा सेवा की कमी को ठीक करना।

- खराब वस्तु को बदल कर नई ठीक/सही वस्तु उपलब्ध करना।
- उत्पाद के लिए दिए गए मूल्य को वापस करना।
- उपभोक्ता को खराब वस्तु/सेवा से होने वाली हानि की क्षतिपूर्ति करना।
- अनुचित व्यापारिक व्यवहार को रोकना तथा उसकी पुनरावृत्ति न करना।
- खराब तथा खतरनाक वस्तुओं की बिक्री पर रोक लगाना।

उपभोक्ता संगठनों तथा गैर सरकारी संगठनों की भूमिका

- प्रशिक्षण कार्यक्रम, सेमिनार तथा कार्यशाला आयोजित करके आम जनता को उपभोक्ता अधिकारों के संबंध में शिक्षा देना।
- इस संबंध में प्रकाशन तथा पत्रिकाएं जारी करना।
- उपयुक्त उपभोक्ता न्यायालय में उपभोक्ता की ओर से शिकायत दर्ज करना।
- निकृष्ट, मिलावटी पदार्थों इत्यादि के खिलाफ जागरूकता फैलाने के उद्देश्य से प्रदर्शनी आयोजित करना।

उपभोक्ता संरक्षण के तरीके एवं साधन

(1) **सरकार** :- सरकार विभिन्न प्रावधान बनाकर उपभोक्ताओं का हित संरक्षित करती है। जैसे उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 वस्तु विक्रय अधिनियम, 1930 भारती मानक अधिनियम ब्यूरो 1986 आदि उपभोक्ता की शिकायत पर हर्जाना दिलवाने का त्रिपक्षीय तंत्र है।

(2) **उपभोक्ता संगठन** :- ये संगठन व्यवसायों पर दबाव बना सकते हैं कि गलत क्रियाविधियों तथा उपभोक्ताओं के शोषण से दूर रहें। उदाहरण

1. उपभोक्ता समन्वय परिषद्, दिल्ली
2. सामान्य निमित्त दिल्ली
3. उपभोक्ता संघ कोलकता
4. मुंबई ग्राहक पंचायत, मुंबई आदि।

(3) **व्यवसायिक संगठन** :- व्यापार, वाणिज्य एवं कारोबार का संघ जैसे भारतीय वाणिज्य मंडल का महासंघ तथा भारतीय उद्यम परिसंघ ने अपने सदस्यों के लिए ग्राहकों से व्यवहार करने के लिए आचार संहिता लागू की है।

मुख्य प्रश्न

1. अंक वाले प्रश्न

- (1) उपभोक्ता संरक्षण का क्षेत्र क्या है?
- (2) उपभोक्ता के शोषण के कोई दो उदाहरण दीजिए?
- (3) भारत सरकार द्वारा पारित दो प्रावधान दीजिए जो उपभोक्ताओं के हितों के संरक्षण में सहायता

करते हैं।

(4) उपभोक्ता शिकायतों के हल हेतु किस प्रकार की न्यायिक मशीनरी उपलब्ध है?

(5) सोने की शुद्धता एवं खाद्य पदार्थों के लिए प्रमाणित चिन्ह लिखिए?

3 एवं 4 अंक वाले प्रश्न

(6) उपभोक्ता संरक्षण में महाविद्यालयों एवं विद्यालयों की भूमिका का वर्णन कीजिए?

(7) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के महत्व पर प्रकाश डालिए।

5 एवं 6 अंक वाले प्रश्न

(8) उपभोक्ता संरक्षण के अंतर्गत उपभोक्ता संगठनों तथा गैर-सरकारी संगठनों के कोई छः कार्यों की व्याख्या कीजिए।

(9) उपभोक्ता के हितों में मान्य छह अधिकारों की व्याख्या कीजिए।

(10) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के अंतर्गत उपभोक्ताओं को उपलब्ध उपचारों की व्याख्या कीजिए।

यूनिट 13

प्रोजेक्ट कार्य

परिचय :- इसका अभिप्राय एक ऐसी क्रिया से है जिसका कोई विशेष उद्देश्य होता है और जिसे पूरी लगन व उत्साह के साथ किया जाता है।

प्रोजेक्ट कार्य विद्यार्थियों द्वारा गुप में या अकेले किया जाता है। यह दो प्रकार से किया जा सकता है :-

- (1) किसी व्यवसायिक स्थान का भ्रमण करना जैसे:- बैंक, स्टॉक एक्सचेंज या माल
- (2) उत्पाद या प्रोजेक्ट की केस स्टडी करना, जैसे पैकिंग, लैबलिंग आदि।

प्रोजेक्ट के उद्देश्य

- (1) विद्यार्थियों को गहन जानकारी देना।
- (2) विद्यार्थियों में सृजनात्मकता का विकास करना।
- (3) विद्यार्थियों में विचार शक्ति का विकास करना।
- (4) विद्यार्थियों की सैद्धान्तिक जानकारी को व्यवहारिक जानकारी में बदलना।

प्रोजेक्ट कार्य के चरण :-

- (1) विषय छांटना
- (2) विषय को परिभाषित करना
- (3) विषय का उद्देश्य निर्धारित करना
- (4) प्रश्नावली तैयार करना
- (5) पूछताछ करना
- (6) सूचनाएं व आंकड़े इकट्ठे करना
- (7) आकड़ों व सूचनाओं का सम्पादन करना
- (8) आकड़ों या सूचनाओं का विश्लेषण करना
- (9) रिपोर्ट तैयार करना

सी. बी. एस. ई द्वारा प्रोजेक्ट कार्य अंक निर्धारण

- | | |
|--|---------|
| 1. Initiative Coperativeness and Participation | 1 Mark |
| 2. Creativity in Presentation | 1 Mark |
| 3. Content, Observation and Research Work | 2 Marks |

4. Analysis of Situation
5. Viva

2 Marks
4 Marks
10 Marks

Total

प्रोजेक्ट की विषय वस्तु :-

- (अ) वैज्ञानिक प्रबन्ध
1. कार्य विभाजन
 2. आदेश की एकता
 3. निर्देश की एकता
 4. कर्मचारियों का पारिश्रमिक
 5. सोपान श्रृंखला
 6. क्रियात्मक फोरमैनसिप
 7. समय अध्ययन
 8. गति अध्ययन
 9. थकान अध्ययन
- (ब) व्यवसायिक वातावरण
1. नयी औद्योगिक नीति का प्रभाव
 2. नयी व्यापार नीति
- (स) संगठन
1. विभागीयकरण
- (द) नियुक्तिकरण
1. कार्य पर प्रशिक्षण
 2. कार्य से परे प्रशिक्षण
- (य) वित्तीय प्रबन्ध
1. स्टॉक एक्सचेंज
- (क) बी. एस. ई (ख) एन. एस. ई
2. ट्रेडिंग कार्य विधि
- बचत खाता, ट्रेडिंग खाता, डी-मेट खाता खोलना
3. सेबी - गठन व कार्य
- (र) विपणन प्रबन्ध
1. ब्राडिंग
 2. लैवलिंग
 3. पैकेजिंग
 4. वितरण माध्यम के प्रकार
 5. विक्रय संवर्द्धन की विधियां
- (ल) उपभोक्ता संरक्षण
- आई. एस. आई मार्क, हालमार्क व एगमार्क के विज्ञापन